तेज स्वरोदय विज्ञान

पं० रामेश्वरलाल शर्मा
बी ए , एल एल बी ,

मंगल साहित्य कुटीर
रतनगढ (बीकानेर)

तेज स्वरोदय विज्ञान

लेखक—

पं० रामेश्वरलाल शर्मा
बी ए एल एल, बी,
तहसीलदार



प्रथम संस्करण ५००० } सं० २००५ वि० { मूल्य २॥) रु०

प्रकाशक—
मङ्गल साहित्य कुटीर
रतनगढ़ (बीकानेर)

मुद्रक—
पं० श्रीराम शर्मा शास्त्री
सूर्यप्रेस रतनगढ़ (बीकानेर)

समर्पण



यह कृति,

श्रद्धेय गोलोकवासी पूज्य पिताजी श्री पं० तेजारामजी की स्मृति में सादर सांजलि समर्पित है जिनकी अज्ञात प्रेरणाओंसे मैं अपने जीवन में यह लाभ उठासका ।

—रामेश्वरलाल शर्मा



इस पुस्तकके—

सहायक ग्रन्थ

ऋग्वेद, ऐतरेयारण्यक, शतपथ ब्राह्मण, कौशीतकि ब्राह्मणोपनिषद्, शिवस्वरोदय, ज्ञानेश्वरी (श्री ज्ञानेश्वर), गीता रहस्य (तिलक), कल्याण-साधनाङ्क, कल्याण-शक्तिअङ्क, कल्याण-योगाङ्क, सद्ज्ञान चिन्तामणि, योगदीपक, योगशास्त्र भाषान्तर, ज्ञानस्वरोदय, स्वरोदयसार, गोरक्ष-पद्धति, घेरण्ड संहिता, याज्ञवल्क्य स्मृति, पवनविजय स्वरोदय, योग समाचार संग्रह, स्वरसिद्धि विज्ञान, जयलक्ष्मी-स्वरोदय-टीका, पवन स्वरोदय, राजविजय-स्वरोदय, स्वरग्रन्थ, स्वरतत्त्व-चमत्कार, स्वरफल, सूर्यस्वर-विचार, तैत्तिरीयोपनिषद्, सन्ध्याविज्ञान, कर्मयोग।

The voice of the silence

Nature's finer forces

Serpent power by John Woodraffe

The serpent power by Arther Avalon

The science of seership by Hodson

The mysterious kundlini by Rele आदि आदि।

तेज स्वरोदय विज्ञान—

लेखक-प० रामेश्वरलाल माटोलिया
बी०ए० एल०एल०बी०
सरदार शहर
(बीकानेर स्टेट)

लेखक-परिचय

यह युग एक वैज्ञानिक युग है। प्राचीन भारतीय-विज्ञान एव अर्वाचीन पाश्चात्य-विज्ञानमें वस्तुत यही अन्तर है कि जहाँ प्राचीन भारतीय-विज्ञान भौतिक एव आध्यात्मिक दोनों विज्ञानोंके अन्वेषण और संवर्धनमें तत्पर रहता था वहा आज का पाश्चात्य-विज्ञान केवल भौतिक वस्तुओंके विश्लेषण एव उनके शक्ति-समर्जनमें ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेता है।

कारण यही है कि प्राचीन पद्धतिसे आन्तरिक विज्ञानको विकसित करनेकी न तो आधुनिक मानवमें शक्ति है और न उस प्रणाली पर उसकी श्रद्धा है। दूसरे शब्दोंमें यह भी कहा जासकता है कि आत्मिक विज्ञानकी सिद्धिका साधक प्रत्येक साधारण व्यक्ति नहीं होसकता। उसके लिए विशेष नियमोंके पालन और एक विशेष श्रद्धाकी आवश्यकता है। श्री प० रामेश्वरलालजी बी ए, एल एल बी स्वभावसे अपनी छात्रावस्थासे ही इस कार्यके लिए एक विशेष लगनके व्यक्ति हैं। जीवनको इस स्तर तक पहुँचानेमें इनकी एक अलग पृष्ठ-भूमिका और कुछ पूर्वजन्म संस्कार हैं जिन्होंने इन्हें सर्वदा आर्य-संस्कृतिके शुभ सन्देशोंको दत्तचित्त हो सुननेके लिये

जागरूक रक्खा। अपने कॉलेजके जीवनमें ही प्राणायाम, वैदिक संस्कृति, राजयोग, हठयोग और स्वरयोग आदि गहन विषयोंपर इन्हें भाषण देते हुए मैंने सुना है। प्रस्तुत पुस्तक उन्हीं भाषणों और इनके अद्यावधिपर्यन्त जीवनका नतीजा है।

यद्यपि विषय गम्भीर है, परन्तु गहनातिगहन गह्वरमें पडे हुए इस प्राचीन स्वरविज्ञानको अपनी सरल वर्णनशैली, शुद्ध हिन्दीभाषा और अनुभवसे सम्पन्न कर जिस रूपमें हमारे सामने रक्खा है, उसे पढकर हम आश्चर्यचकित हुए विना नहीं रह सकते। हमें यह सुप्राप्यफल आपके गहरे अध्ययन और क्रियात्मक महान् साधनाओंके उपरान्त सहज ही में मिल गया है। अब हमें न तो योग शब्दके श्रवणमात्रसे भय है और न इस योगकी प्राप्तिके लिये अगम्य-हिमालयकी पर्वतीय कन्दराओंमें जानेकी आवश्यकता है।

आपने इस पुस्तकमें कृष्णके कर्मयोग, गोरखके हठयोग और कबीरके रहस्यवाद आदि अन्यान्य स्वरसाधना की समस्त प्रक्रियाओंसे और अन्तस्थ शारीरिक नाड़िजालसे हमें पूर्ण रूपसे परिचित कराया है। इससे यद्यपि विशेषतया साधना-निरत साधुससार अधिक लाभ उठा सकेगा, परन्तु यह विज्ञान केवल साधुओंके लिए ही नहीं इससे प्रत्येक गृहस्थी यथा-राजा, योद्धा, पापी, गुप्तचर, वैद्य, व्यापारी आदि बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं। यद्यपि आपका इस बातका पूर्ण अन्देशा है कि इससे पापी, दुराचारी और पैसेवालावर्ग भी

श्रमिक या मध्यमवर्गसे अधिकाधिक लाभ उठायेगा, और समाजनाशमें भी वह इस अमोघास्त्रको चलासकता है परन्तु साथमें कुछ ऐसी क्रियायें भी हैं जिन्हें साधे विना वह जरा भी लाभ न उठा सकेगा। ये ऐसी क्रियायें हैं जिनके साधने पर साधक हठात् अपनी मतिको समाजनाशमें न लगाकर उसकी उन्नतिमें ही लगाता है। यह इस विज्ञानकी एक सबसे अनूठी बात है।

सन्क्षेपमें यह पुस्तक मानव समाजकी प्रत्येक श्रेणीको हर दिशामें बढ़ानेमें पूरी सहायता देती है और उन्हें अपने ही अन्दर रहनेवाली शक्तियोंसे पूरा परिचय कराती है। यदि यही पुस्तक किसी योरपीय विद्वान् द्वारा हमारे सामने रखी जाती तो हम उसकी बुद्धिमत्ता और ज्ञानलिप्साकेलिये उसे साधुवाद देते। परन्तु हम भारतवासी अपने ही भाई द्वारा प्रकाशमें लाई हुई आर्यसंस्कृतिकी विज्ञानमयी बातों पर ध्यान नहीं देते।

जगत्का यह समस्त खेल केवल प्राणोंपर आश्रित है और स्वरविज्ञान इस प्राणगतिके सञ्चारका ही एक नामान्तर है। श्रीयुत् रामेश्वरलालजी ने इस विज्ञानकी ओर फिरसे हमारे ध्यानको आकृष्टकर प्राणिमात्रका महान उपकार किया है। यद्यपि आप बीकानेर राज्यके प्रतिसमय अपने कर्तव्यमें निरत एक उच्चअधिकारी हैं परन्तु फिर भी अपनी लगन और अपने अनुभवके बलपर आपने इस शास्त्रमें जिस विशेपता

को दिखाया है उसके लिए भारतीय-विज्ञान इनका सदा आभारी रहेगा ।

मैं स्वय स्वरविज्ञानमे एक पूर्ण विश्वास रखनेवाला व्यक्ति हूँ और यह मेरा निजी अनुभव है कि इस विश्वका समस्त कार्यकलाप एक नियमित स्वरसचारके आधार पर चल रहा है । यह स्वर केवल मनुष्यमें ही नहीं अपितु चेतन एव अचेतन प्रत्येक पदार्थकी गतिविधिमे व्याप्त है ।

मेरा विश्वास है कि इस शास्त्रके प्रेमी प्रत्येक भारतीय एव इतर देशोंके विद्वानोंमें इस पुस्तककी अच्छी प्रतिष्ठा होगी और नवीन सिद्धान्तोंके व्यक्ति भी इससे पूरा लाभ उठा सकेंगे । मैं हृदयसे इसके पूर्ण प्रचारका पक्षपाती हूँ ।

सरस्वती सदन
बीकानेर
२१ ८-४८

विद्याधर शास्त्री एम ए, विद्या-
वाचस्पति, विद्यारत्न, दर्शनालङ्कार
विद्यार्णव आदि आदि
संस्कृत प्रोफेसर
Head of the Sanskrit
Department
Dungar College Bikaner

विषय-सूची

प्रथम प्रकाश

विज्ञानके प्रसारकी आवश्यकता क्यों ?

[१-१७]

द्वितीय प्रकाश

श्वास प्रश्वास गतिज्ञान एव ॐ शब्दकी उपादेयता,

[१८-२३]

तृतीय प्रकाश

स्वरोदयका ज्ञान

[२४-२६]

स्वर तथा उसका उदय, स्वरकी परिभाषा व उसका उदय, स्वरके विषयमें मूलसिद्धान्त व तत्त्व आदि,

चतुर्थ प्रकाश

स्वरोंका तिथियोंसे मेल

[३०— ३४]

स्वर चलनेके नियम, सूर्यचन्द्रकी नाडीमें २।।-२।। घडी तक तिथिक्रमसे चलना, त्र्यम्बक शास्त्री खरेका मत, स्वरकी गति वारों पर आश्रित नहीं अपितु तिथियों पर आश्रित है, तिथिका स्वरसे निकास, स्वरसे भविष्यज्ञान, शासकवर्गको इसकी आवश्यकता

पञ्चम प्रकाश

स्वरमें श्वास जाननेकी विधि एवं पंचतत्त्व

[३५—४५]

स्वरोंमें प्रतिक्षणका ज्ञान आवश्यक क्यों ? सूर्य एवं चन्द्र नाडीकी पहिचान, जीवस्वरके आधे मस्तिष्कमें चेतना व प्रकाश, जीव स्वरकी ओर की आँतड़ियोंमें शक्तिका भान,

नाड़ियोंकी गतिका मार्ग, जीवस्वरकी ओरका नसकोरा अन्दर से साफ ज्ञात होना, पञ्चतत्त्व और उनका क्रम, तत्त्वोंकी गतिमें पूर्वापर विचार और तत्त्वोत्पत्ति, तत्त्वक्रम, तत्त्वोंका समय, तत्त्वोंके नक्षत्र, स्वरोंकी राशि, स्वरोंके देवता,

षष्ठ प्रकाश

स्वरोंके साथ पृथक् तत्त्वोंकी मैत्री और उसका फल,

[४६-६६]

स्वरोंका आठ प्रकारका विज्ञान, प्रातःध्यान, पञ्च घटी तक प्राण स्थिर करके ध्यान, तत्त्व विभाग, श्वास फैंक कर तत्त्व जानना, काचके टुकडे पर श्वाससे तत्त्वज्ञान, स्वभावसे तत्त्व जानना, पञ्चरङ्ग गोलीसे तत्त्वज्ञान, शब्दोच्चारणसे तत्त्वका प्रवल बनना, पृथ्वीतत्त्व, जलतत्त्व, अग्नितत्त्व, वायुतत्त्व, आकाशतत्त्व, श्वासकी गति, स्वाद, कार्य, तत्त्वोंका प्रभाव,

सप्तम प्रकाश

स्वर परिवर्तन विधि और लाभ,

(६७-७१)

सोकर स्वर वन्द करना, हथेली पर जोर देकर स्वर वदलना, घुटनेसे स्वर वदलना, कोहनीको पसलियोंमें लगाकर स्वर

बदलना, स्वरको ऊंचा-नीचा करके व नाकसे स्वर बदलने का ढंग, धक्केसे बदलेहुए स्वरका फल, सूर्योदय कालके पहले प्राणका मूल्य, घी, शहद खानेसे स्वर बदलना,

अष्टम प्रकाश

भिन्न २ स्वरोंमें भिन्न २ कार्य और मन्त्रबलसिद्धि

[७२—८६]

वाम स्वरके कार्य, सुषुम्ना कार्य, पिंगलाके कार्य, मेरा विशेष अनुभव, स्वर और मन्त्रबलका सान्निध्य, स्वरोंमें व्यतिक्रम, इडामें नये चन्द्रका दर्शन, सूर्यदर्शन, सुषुम्ना नाडी,

नवम प्रकाश

जय, पराजय, गर्भाधान, भाग्योदय, आग बुझाना

[९०—१०३]

वंध्या पुत्रोत्पत्ति, सन्तति निरोध, कार्यसिद्धिकरण, सम्मिलन आदिका काम, समरमें स्वरोंकी उपादेयता, गर्भाधान, पुत्रोत्पत्ति, गर्भ न रहना, वंध्याके पुत्र, गर्भाधानमें भिन्न भिन्न तत्त्वोंका प्रभाव, गर्भके विषयमें प्रश्न, रोगी सम्बन्धी प्रश्न, भाग्योदय, आग बुझाना, मेरे विशेष अनुभव,

दशम प्रकाश

नये वर्षका फल

[१०४—१०६]

तत्वविचारसे निष्कर्ष

एकादश प्रकाश

श्वास प्रश्वाससे आयुका सम्बन्ध

[१०७ ११२]

ज्ञान पिपासा शान्त करनेकी तालिका।

द्वादश प्रकाश

मृत्यु रोग, एवं आपत्तिका पूर्वज्ञान तथा उनका निराकरण

[११३—१४१]

मृत्यु, नेत्रसे आयुज्ञान, कानसे आयुज्ञान, मुखाकृतिसे आयुका ज्ञान, आपत्ति रोग परिज्ञान और उनका उपचार, शुभफल, अशुभफल, रोग और उसका प्रतिकार, स्वरज्ञानसे वैद्यको दोषकी पहचान, अन्य उपयोगी उपचार, खूनसाफ करनेकी विधि, यौवन स्थिरीकरण उपाय, बीमारीकी पहिचान, स्वप्नदोष, सिद्धासन, आँखकी ज्योति बढानेका योग, दिनमें चन्द्र व रातमें सूर्यस्वरकी आवश्यकता, दीर्घायु।

त्रयोदश प्रकाश

स्वर-सहायतासे प्रश्नोंका उत्तर,

[१४२-१४६]

प्रश्नोत्तरी, प्रवास सम्बन्धी प्रश्न, तत्त्वोंमे विशेष बातें।

आमुख

"सर्वं हीदं प्राणेनावृतम्"

ऐतरेयारण्यक ।

इस संसारमें मानवकल्याणके लिये ऐसी ऐसी अनेक गुप्तशक्तियां स्वयं उसके शरीरमें निगूढ हैं कि जिनका वास्तविक ज्ञान प्रत्येक मानवविग्रहधारीके लिये परमावश्यक है परन्तु यह मानव-मन सांसारिक मोहमाया में इतना लिप्त होजाता है कि वह अपने अन्दर सुरक्षित खजाने का उपयोग कभी कर नहीं पाता, और अज्ञान-वश इस दुर्लभमानव शरीर को व्यर्थ ही नष्ट कर देता है।

हमारे भारतीयदर्शन में प्राणविद्या अर्थात् स्वरविद्या का विशेष महत्व है । इस विद्याका जितना चिन्तन तथा अध्ययन हमारे प्राचीन ऋषिमुनियोंने किया था, उतना शायदही किसी अन्य देशके विद्वानोंने किया होगा । सच तो यह है कि प्राणो-पासनाकी विद्या अर्थात् स्वरविद्या हमारी अपनी सम्पत्ति है । इस विद्याके वास्तविक महत्वको समझना, इस शरीर तथा बाह्य-जगत्में सच्चेकार्य तथा व्यापक प्रभावको परखना, तथा किसी देवता का आरोपकर उसकी उपासना करना, यह सब सिद्धान्त इस भारत भूमि पर ही हमारे पूर्वजोंकी सात्विकबुद्धि तथा उर्वरमस्तिष्कके कारण ही प्राचीनकालमें उत्पन्न हुए थे तथा अब भी हममें किसी

न किसी रूपमें दृष्टिगोचर होते हैं। यह विद्या कबसे चली ? यह कहना बिलकुल असम्भव है, परन्तु जब हमारे साहित्य तथा धर्मका प्रथम प्रभात हुआ तभीसे इस विद्याका उदय हुआ है, यह हम बिना रोकटोक कह सकते हैं, क्योंकि हमारी वैदिक संहिताओंमें विशेषतः ऋक् तथा अथर्व वेदकी संहिताओंमें इस विद्याका उल्लेख सबसे पहले मिलता है। जैसाकि—

अपश्य गोपामनिपद्यमान मा च परा च पथिभिश्चरन्तम्।
स सध्रीची स विषूचीर्वसान, आवरीवर्ति भुवनेष्वन्त ॥

ऋ०वे० १।१६४।३१, १०।१७७।३

इस मन्त्रके द्रष्टा दीर्घतमा ऋषि कह रहे हैं कि मैंने प्राण को देखा है—साक्षात्कार किया है यह प्राण सब इन्द्रियोंका गोपा (रक्षक) है। यह कभी नष्ट नहीं होनेवाला है। यह भिन्न भिन्न मार्गों अर्थात् नाड़ियोंके द्वारा आता और जाता है। मुख तथा नासिका के द्वारा क्षण क्षणमें इस शरीरमें आता है, तथा फिर बाहर चला-जाता है। यह प्राण शरीरमें–अध्यात्मरूपमें–वायुके रूपमें है,

"अर्थात्—प्राण इसविश्वका धारक है प्राणकी ही शक्तिसे जैसे यह आकाश अपने स्थान पर स्थित है उसीप्रकार सबसे बड़े प्राणीसे लेकर चींटी तक समस्त जीव इस प्राणके द्वारा ही विधृत हैं।"

हमारे पूर्वज प्राचीन ऋषि महर्षियोंकी प्राणविद्या विषयक इस परम्पराके टूट जानेके बाद इस दिशाकी ओर बहुत ही कम सज्जनोंने कलम उठाई है। क्योंकि आत्मानुभवकी कमी और योग्यपात्रके अभावके कारण वे इस विज्ञानको न तो मनरुचिकर बना सके हैं और न इसका प्रसारण कर सके हैं। योगी लोग तो सच्चे पात्रोंके अभावके कारण सदा ही हम सांसारिक जनोंसे दूर-से रहे हैं। इस प्रकार उनके वर्षोंके कष्टसाध्य फलोंके उपभोगसे हम सर्वथा वञ्चित रहते आये हैं। आज मैं इस अज्ञानान्धकारावृत मार्ग पर स्वानुभवरूपी बालसूर्यकी लघु किरणोंका प्रकाश डालता हुआ योगीजनोपलब्ध सामग्रीके सहारे स्वरोदयज्योतिषविज्ञानरूपी महासागरको पार करनेकी धृष्टता कर रहा हूं।

यद्यपि इस विज्ञान द्वारा जहाँ मानवहित होता है वहा अज्ञानी एवं पाखण्डीजनोंके स्वरज्ञानी होनेका दावा करनेके कारण मूर्ख जनता गहनगह्वरमें पटकदी जाती है, इससे इस विज्ञान को महान् आघात पहुँचता है जिसके कारण आज इस परसे शनै शनै विश्वास उठता जा रहा है। परन्तु इस विषयके पारंगत विद्वानों और स्वयंके कई वर्षोंके अनुभवके आधार पर मैं दृढता पूर्वक यह कह सकता हूँ कि इस विज्ञान पर अच्छी तरह विश्वास कर चलनेवालोंको हमेशा कार्यसिद्धि ही हुई है। क्यों न हो, यदि यह

(

सर्वसिद्धिदायक व सर्वश्रेष्ठविज्ञान नहीं होगा तो ससारमें दूसरा और विज्ञान सर्वश्रेष्ठ होगाही कौन ? क्योंकि इसका मूल सर्वश्रेष्ठ वस्तु प्राण * है। इस प्रथमसस्करणमें आचार्यो और मेरे स्वयका अनुभवगम्य सकलन है। इससे पाटक अपने आप पहले अनुभव करें और बादमें इसकी उपयोगिताका निर्णय करें।

---

* सतपथ ब्राह्मणमें कहा है —

प्राणो हि प्रजापति (४ । ५ । ५ । १३)

प्राण उ वै प्रजापति (८ । ४ । १ । ४)

प्राण प्रजापति (६ । ३ । १ । ६)

'प्राणो ब्रह्म' इति ह स्माह कौषीतकि

कौषीतकि ब्राह्मणोपनिषद् (२ । १)

'प्राणो ब्रह्म' इति ह स्माह पैङ्ग्य (२ । २)

प्राणो वै सुशर्मा सु प्रतिष्ठान (श० ४ । ४ । १ । १४)

अमृतमु वै प्राण (श० ६ । १ । २ । ३२)

प्राणोऽस्मि प्रज्ञात्मा। त मामायुरमृतमित्युपास्स्वाऽऽयु

प्राण' प्राणो वा आयु । यावदस्मिञ्छरीरे प्राणो वसति

तावदायु । प्राणेन हि एवास्मिन् लोकेऽमृतत्वमाप्नोति।

(शाखायन-आरण्यक ५ । २)

प्राण एव प्रज्ञात्मा। इद शरीर परिगृह्य उत्थापयति।

यो वै प्राण सा प्रज्ञा, या वा प्रज्ञा स प्राण ।

(शाखायन-आरण्यक ५ ३)

रेतो वै प्राण ।

भारतवर्षका वह परम दुर्भाग्यका दिन था, जबकि अनेकानेक विजातीय आक्रान्ताओंसे इसका शौर्य वीर्य ही नहीं अपितु इसकी सतत कल्याणकारिणी विज्ञानमयी विभूतियां भी काल कवलित होगई। उस अधःपतनके समय हमारी बुद्धि भौतिक-वादकी ओर अग्रसर हुई। हमने इहलोक और परलोक हितैषिणी स्वरविज्ञानमयी ज्योतिर्विद्याकी उपेक्षा की, जिससे हम अनुदिन अधःपतनकी ओर अग्रसर होते गये। हमारी पार्थिव एषणाने हमें इसप्रकार वशीभूत करलिया था कि हम अपनी पराजयमें भी विगत गौरव के सहारे अहम्मन्यताके महानदमें निमग्न रहे। उस समय हम भूलगये थे कि हमारा सजग स्वरज्योतिर्विज्ञान हमें उसीपदपर आरूढ़ करसकता है जिस पर हम रहते आये हैं। यदि स्वरविज्ञानकी ओर इतनी उदासीनता न दिखाई गई होती तो हमें आजके इस अशान्त वातावरणमें रहनेका अवसर न मिलता। इस विज्ञानको खोकर हमने अपने व्यक्तित्वको खोदिया जिसके दण्डस्वरूप बहुत वर्षों तक हमें परमुखापेक्षी बने रहना पड़ा है।

आज भारतका सूर्योदय होरहा है। अनेकानेक विज्ञानोंके साथ इस विज्ञानकी ओर भी लोगोंका ध्यान आकर्षित हुआ है, परन्तु बहुत कम। इसके कई कारण हैं। इस विज्ञानकी ओर लोगों-का ध्यान अपेक्षाकृत कम है। जो इसके पारगत हैं वे योग्य पात्रोंके अभाव अथवा इससे पाखण्डियों द्वारा अनुचित लाभ उठानेके भयसे प्रकाशमें कम लाते हैं, क्योंकि उनके हाथमें पड़ जानेसे वे इससे

अपना ऐसा पल्लू सीधा करते हैं कि इस परसे सदाके लिये विश्वास उठजाता है। इसका मूल कारण यही होसकता है कि उन पाखण्ड- योंका इस विषयका ज्ञान सर्वथा नगण्य रहता है। यदि इस विज्ञान का सांगोपांगविधिसे अनुभवसिद्ध करतलस्थित आमलकवत् सत्सारज्ञाता गुरुके चरण कमलोंके पास बैठकर ज्ञान प्राप्त कियाजाय तो जरूर इस विज्ञानसे लाभ पहुँच सकता है।

आजका भारत चाहे सब कुछ खो बैठा है, यदि वह फिरसे इस विज्ञानकी ओर अभिरुचि रक्खे और तदनुकूल आचरण करे तो अपने भविष्यकी अज्ञात बातोंका पूर्व ही ज्ञान करके अपनी बल वृद्धि भी करसकता है, क्योंकि स्वरविज्ञानका प्राणविज्ञानके साथ अभिन्न सम्बन्ध है। दोनोंका अन्योन्याश्रय सम्बन्ध कहें तो अत्युक्ति न होगी। इस विज्ञानका ज्ञाता अपने वचनका पक्का, सदा- चारी, गम्भीर, धीर और वीर होता है, इस प्रकारके विज्ञानके लाभोंको देखकर ही पूर्वजोंका ध्यान इन विज्ञानोंकी ओर अधिका- अधिक आकर्षित हुआ, और वे वीर हुए। उन्होंने 'वीर भोग्या वसुन्धरा' के सिद्धान्तके आधारपर भारतको परतन्त्रताकी बेड़ियोंमें तबतक जकड़ने नहीं दिया जबतक हमारे जैसी पराश्रयाकांक्षिणी गुलाम सन्तान पैदा न हुई। इस गहन विषयके ज्ञाताओं पर यदि हम सरसरी तौरपर नजरडालें तो पता चलेगा कि वैदिक कालसे छठीं शताब्दि तक इसका प्राबल्य रहा। बादमें ग्यारहवीं शताब्दिमें गुरु गोरखनाथके शिष्यों और प्रशिष्योंमें इसका प्रचलन रहा।

दनन्तर इस विद्याका सर्वथा लोप सा होगया और हम भी विज्ञा-तियोंके सम्पर्कमें आनेके कारण उनकी बातोंसे अधिक प्रभावित हुए, व अपने विज्ञानजगतसे मुँह फेरसा लिया। इसी कारण जब कबीर अपनी अटपटी वाणीमें चिरकाल विच्छिन्न इस विज्ञानका स्वानुभवरूपी टिमटिमाते दीपकको हाथमें लेकर अपने ज्ञानपिटारेसे स्वर, योग, कुण्डलिनी, ईडा, पिंगला, सुषुम्ना आदिको निकालकर रहस्य बताने लगे तो हम चौंकगये और उनकी बातों पर नगण्य-सा ध्यान दिया। समयने उस विज्ञानको अन्यवहार्य बतलाया, परन्तु यह हमारी भूल थी हमने उनकी बातों पर बिलकुल ध्यान नहीं दिया और उनके जीवन भर के निष्कर्षको हसीमें उड़ादिया या समझने की आजतक कोशिस न की।

आज भी समय रहते यदि हम इस विज्ञानकी ओर ध्यान दें और उचितमात्रामें स्वरविज्ञान और साथमें ही प्राणविज्ञान इन दोनोंका अध्ययन मनन और अनुसरण करें तो ससारमें रहते हुए भी सांसारिक विपत्तियोंके आघातको सहर्ष सहनकरतेहुए दीर्घजीवी बन सकेंगे।

आजका मानव अपने आप आपत्तियोंका जाल गूंथता है और उसका दोष ईश्वर या भाग्य पर थापता है। आज भारतके नर नारी बहुसन्ततिजन्य अपनी गरीबी व अन्य आपत्तियोंके प्रति-कारमें अक्षम होकर दुखी हैं, तो पाश्चात्य जगतके मानव बहु-साधनता समुपलब्ध होने पर भी सांसारिक सुखाभावके कारण

श्रौर भी दुखी हैं। मानवका ज्ञान सीमित है, वह अपने मर्यादित ज्ञानसे सुखदुखका अनुभव करता है। अज्ञानसे दुःखोंकी उत्पत्ति और ज्ञानसे उनका विनाश होता है। प्रस्तुत पुस्तकके लिखनेका उद्देश्य दुःखविनाश और सुखका लाभ है। अर्थात् ज्ञान प्राप्ति ही इसका प्रधान लक्ष्य है। क्योंकि अज्ञानके कारण मानव मानव का शत्रु होरहा है। वह अपने सहज ज्ञानसे हाथ धोबैठा है। महामारिया अकालमृत्यु और दैविकताप आदिका सामना करते करते अपनी हिम्मत हार बैठा है। इधर स्त्रीवर्ग भी तनक्षीण मनमलीन होकर मानव जीवनका सच्चा सदुपयोग नहीं कर पाता। इन सबका मूल कारण यदि किसी को कहाजाय तो स्वरविज्ञानके प्रति हमारी उपेक्षामयी वृत्ति है। यदि हम इसके आधारपर सांसारिक जीवनकी रूप रेखा बनाकर चलें तो जीवनका हम एक सर्वश्रेष्ठ उपयोग कर सकेंगे। इसके द्वारा मनुष्य भाग्योदय, मृत्यु, रोग और आपत्तिका निवारण, मस्तिष्कसे आयु ज्ञान, नियमित श्वास प्रश्वाससे आयु प्रसारण, वन्ध्याके पुत्रोत्पत्ति, तत्वज्ञानके साथ मानव शरीरमें प्रतिदिन पैदा होनेवाले पीयूषको शरीरस्थ सर्पिणीके मुखमें न डालकर अपने शरीरमें रमाकर अमरयोगी भी बनसकता है।

इसी प्रकार स्वरविज्ञानके आधारपर हम यह भलीभांति जान सकते हैं कि आज कौनसी तिथि है? क्योंकि स्वरानुसार ही तिथियां निर्मित हुई हैं। केवल मात्र स्वरयोगी ही वर्षारम्भमें बढ़ीया गली हुई तिथि, और कौनसी तिथिको वर्षारम्भ माना जानेका अन्तिम निर्णय देसकता है। स्वरज्ञानके द्वारा दैनिक, सासाहिक मासिक

और वार्षिक फलकी जाँच की जासकती है। तिथियोंकी क्षय और वृद्धिका निर्णय इसी स्वरविज्ञानकी सहायतासे सरलताके साथ किया जासकता है।

इस गहनातिगहन विषयपर लेखनी उठानेके साहसका कारण अनुभवी योगियोंका सम्पर्क और आत्मानुभव है। अग्निबुझाना आदि कई लौकिक कार्य अभी तक अनुभूत नहीं हैं, आशा है अव-सरप्राप्त होगा। कई वर्षोंके अनुभवके आधारपर मैं यह दावेके साथ कहसकता हूं कि मैंने अनेक विपत्तियों पर सहजमें विजय पाई है, और तबसे एक ऐसा आत्मबल पैदा होगया है कि मैं इस विषयसे अपने भाइयोंको परिचित कराऊं। इस ग्रन्थके सम्पादनमें मैं शिव-स्वरोदय, कल्याणके साधनाङ्कके 'स्वरोदय साधन' शीर्षक लेखके लेखक श्री तड़ितकान्त झा प्रभृति विद्वानोंका परम आभारी हूं, जिनके लेख और सामग्रीसे मुझे आत्मप्रेरणा मिली और बादमें अपने अनुभवकी आधारशिलापर खड़ा होकर यह ग्रन्थ सम्पादनकर रहा हूँ। सज्जन पाठक इस विषय पर निष्पक्षभावसे मनन करेंगे और इस पुस्तकमें जितनी त्रुटियां होंगी उन्हें केवल क्षमा ही नहीं करेंगे किन्तु उनपर प्रकाश डालकर लेखकको कृतार्थ करेंगे।

मैंने अपने अनुभवोंको प्रधानता दी है। इस पुस्तककी सत्यताको अनुभवरूपी कसौटी पर कभी भी कसकर परखा जासकता है। जनता जनार्दनको इस लघुप्रयाससे यदि लाभ पहुँचा तो मैं अपने प्रयत्नको सफल मानकर, भविष्यमें और भी अधिक सेवा

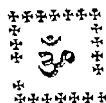
करनेका प्रयास करूंगा इस पुस्तकमें यौगिकक्रियासे सम्बन्धित कुण्डलिनी, स्वर आदि विषयक चक्रोंके चित्र देनेका विचार था, परन्तु वर्तमान समयमें चित्रोपयोगी कागजोंकी दुर्लभताको देखकर उक्त विचार छोड़ना पड़ा।

पाठकगण ! इस पुस्तकके छपनेमें प्रेसकी भूलें बहुत रही हैं एवं टाइपों का चयन भी उपयुक्त नहीं होसका है अतः इन पराधीन गलतियोंके लिये क्षमा करतेहुए मुझे उनके लिये सूचित करनेकी कृपा करें, ताकि द्वितीय संस्करणमें उनका यथोचित परिमार्जन करदिया जासके।

इस पुस्तककी भाषा आदिके संशोधनमें मेरे मित्र पं० कन्हैयालालजी शास्त्रीने जो कष्ट उठाया है उसके लिये मैं उनको हार्दिक धन्यवाद देता हूं।

योगकुटीर
सरदारशहर (बीकानेर)
श्रावण शुक्ला ७ (तुलसी जयन्ती)
सम्वत् २००५ वि०

विनीत—
पं० रामेश्वरलाल शर्मा
बी ए., एल एल बी,



तेज स्वरोदय विज्ञान



प्रथम प्रकाश

विज्ञान के प्रसार की आवश्यकता क्यों ?

यह विज्ञान प्राचीन समय में ऋषि महर्षियों को कठिन तपस्या और विशेष अनुभव द्वारा प्राप्त हुआ था। यह

स्वरोदय विज्ञान की विशेषता

स्वय से सम्बन्ध रखनेवाला पूर्ण चमत्कार स्वरोदय विज्ञान है, यत्र तत्र आज भी इसका नाम सुनाई पड़ता है, परन्तु इसका जानकार लाखों में से कोई विरला ही मिलता है,

और शायद वह भी इसका पूर्ण ज्ञाता हो, इस में भी पूर्ण सन्देह है। सागोपाग विधि से स्वरविज्ञानवेता शायद ही मिले। इसके कई एक कारण हैं। जो इस विज्ञानका पूर्ण ज्ञाता होता है वह सासारिक वातावरण से अलग-सा होजाता है, और सुपात्र शिष्य के अभाव में इस विज्ञान रूपी नग्नकृपाण को किसी कुपात्र शिष्य के हाथों सौंप कर ससार को अज्ञानान्धकार या अन्धविश्वास में पटकना उचित नहीं समझता। जो इस विज्ञान का सच्चा जानकार होगा वह अपनी जीवन भर की इस अमूल्य निधि को व्यर्थ में लुटाकर पापका भागी कभी नहीं बनेगा। क्योंकि यह विज्ञान किसी अंश में अणुबम-विज्ञान से भी अधिक भीषण और भयावह है।

इसके ज्ञाता

इसके ज्ञाता को हर प्रकार का ज्ञान चाहे सासारिक हो या दैवी, होजाता है। उससे ब्रह्माण्ड की कोई भी बात छिपी नहीं रह सकती। क्योंकि मनुष्य को इस विज्ञान से परमात्मतत्व का साक्षात्कार होता है, जिससे उसमें अलौकिक दैवी शक्तियों का आविर्भाव होजाता है। इसका अपूर्ण ज्ञाता या इस विषय का झूठा ही दम भरने वाला अन्याय पर भी उतर सकता है। अत प्रत्येक मानव का कर्तव्य है कि इस पुस्तक का अध्ययन और मनन मनोयोग पूर्वक करे और किसी को अनुचित लाभ उठाने

स्वरोदय विज्ञान से हर प्रकार के सांसारिक व दैविक ज्ञानकी प्राप्ति

का अवसर हाथ न आने दें। क्योंकि मेरा यह लघु प्रयास जन-कल्याण के लिए है।

मेरी इच्छा

मैंने इस स्वरोदय विज्ञान की अमूल्य निधि को कतिपय विशिष्ट योगियों के सम्पर्क और स्वय के कई वर्षों के अनुभव से प्राप्त किया है। मैं इस विषय को अपने तक ही सीमित रखना उचित नहीं समझता, सदा से ही मेरी यह बलवती इच्छा रही है कि हमारे प्राचीन विज्ञानों को फिर से प्रकाश में लाकर उन से भारत का उद्धार किया जाय। कतिपय ग्रन्थों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इस रहस्य को प्रकट न किया जाय, परन्तु निष्पक्ष नर की न्याय दृष्टि से मेरा कर्तव्य मुझे यही आदेश देता है कि मैं तो अपनी ओर से वर्षों के विलोडन के पश्चात निकली हुई सामग्री को जनता के हाथों सौंप दूँ। आगे उसकी इच्छा है कि वह चाहे तो इसका सदुपयोग करे या दुरुपयोग। मैं इस मत का अनुयायी हूँ कि—' किसी विज्ञान को व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति न मानी जाय। उस विज्ञान-सम्पत्ति को सर्वसाधारण के लिये सुलभ कर दी जाय।" क्योंकि आविष्कारकर्ता आविष्कार करते समय जनता के हित का ध्यान रखकर ही तत्पर होता है। वह स्वय नीच प्रवृत्तियों की ओर ध्यान न देकर अपनी आत्मा को विशाल बनाये रखता है। इसीलिये आज मैं इस अलभ्य और महत्कष्ट साध्य सामग्री

का सकलन कर पाठकों के आगे प्रस्तुत कर रहा हूँ। मेरी इच्छा है कि यह विज्ञान सुपात्र पुरुषों को सुचारु रूप से प्राप्त हो और वे अपने जीवन मे इसका लाभ उठावें, तथा ससार को भी लाभान्वित कर सासारिक और दैवी सुखों में उन्नति करते हुए आत्मोन्नति करें।

शिव स्वरोदय, जो इस विज्ञान पर एक सर्वमान्य मूल ग्रन्थ है, में इसके विषय मे किसी अश में पूर्ण रूप से विचार किया गया है । इसमे 'शिव-पार्वती' सम्वाद है। आजकल लोग पचागों मे भैरवभवानी का सवाद देकर भैरवभवानी की महिमा नष्ट करते हैं, परन्तु यह शिव-पार्वती सम्वाद ऐसा नहीं है। पार्वती-महादेवजी से प्रश्न करती है कि-"हे देवाधि-देव ! मेरे लिये सर्व सिद्धि कारक ज्ञान का भाषण करिये, और यह बतलाइये कि यह ब्रह्माण्ड कैसे उत्पन्न हुआ और किस प्रकार यह स्थिर और बाद में लय होजाता है"। इस का उत्तर शिवजी ने दिया कि यह ब्रह्माण्ड तत्त्व से उत्पन्न होता है, उसीसे पालित है, और बाद मे उसी मे लीन हो जाता है। निर्लेप निराकार सच्चिदानन्द भगवान से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी ये पाच तत्त्व पैदा हुए। इन के विस्तार से यह चराचर ब्रह्माण्डोत्पत्ति हुई। इन्हीं से शरीर बना है। इन बातों को केवल मात्र योगी जन जानते हैं।

शिव-पार्वती संवाद

इस ज्ञानकी जितनी प्रशसा की जाय थोडी है। यह सब तत्त्वोंका शिरोमणि है। सत्यका निश्चय करानेवाला और नास्तिकजनोंमें आश्चर्य पैदा करने वाला है। आस्तिकजनोंका तो यह आधार है। इसके

इस से सर्व ज्ञान

ज्ञानसे प्राणी सर्वज्ञाता हो जाता है। इस में सम्पूर्ण वेद शास्त्र हैं। इस में वह उत्तम एवं गुह्यातिगुह्य ज्ञानविद्या है, जिससे मनुष्य इस संसारमें सुखी होकर परलोकमें भी एक अच्छा स्थान बना सकता है। यह सब ग्रन्थोंका सार है। यह आत्म स्वरूप है। इस उत्कृष्ट ज्ञान विना ज्योतिषी, स्वामीहीन घर, शास्त्रहीन सुवक्ता और सिर बिना देह जैसा है। अखिल ब्रह्माण्डके खण्ड पिण्ड शरीर आदि इसीसे रचे गये हैं। यह सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन और संहार करने वाला है। इससे उत्तम गुह्य ज्ञान या धन देखने अथवा सुननेमें नहीं आया। इसके बलसे शत्रुनाश, लक्ष्मीप्राप्ति, मित्र-समागम, इच्छित-कीर्ति, विवाह, राज-दर्शन, भूपति-वश, देव-सिद्धि, इच्छित-खाद्य वस्तु और ठीक समय पर मलमूत्र विसर्जन, आदि होता है। सम्पूर्ण वेदान्त, पुराण, शास्त्र, स्मृति आदि सब इससे गौण हैं। जब तक इस तत्त्वका ज्ञान नहीं हो पाता तव तक नाम रूप आदि मिथ्या भ्रम रहता है और अज्ञान, मोह भी तब तक ही है। जैसे दीपक कमरेको प्रकाशित करता है वैसे ही यह ज्ञान शरीरको प्रकाशमान अथवा

जाज्वल्यमान कर देता है। तिथि, नक्षत्र, वार, ग्रह, देवता, भद्रा, व्यतिपात, वैधृति आदि दोष इसमें नहीं लगते। इसका बल प्राप्त होने पर जीवन में कोई बुरा योग नहीं पड़ता। इसकी साधनासे प्राणिमात्रको प्रत्येक काममें बिना परिश्रमके फलप्राप्ति होती है। इससे हम पहले ही सुभिक्ष, दुर्भिक्ष, जय, पराजय, शुभाशुभ, पुत्र, कन्या, नपुँसक, मृत्यु, अमृत्यु, लाभालाभ, शत्रु, मित्र, सुख, दुःख, सिद्धि, असिद्धि आदि सभी बातोंका ज्ञान सहज में ही प्राप्त कर सकते हैं। इच्छानुसार प्रत्येक नर नारी मनोरूप पुत्र या कन्या पैदा कर सकता है। यदि मनुष्य चाहे तो सन्तति-निरोध भी कर सकता है।

इसका ज्ञान न होने से कमी

आज भारतवर्ष अपने महामन्त्रों, योगों और सिद्धियों को भूल जाने के कारण ही बहु सतति का शिकार हो रहा है, जिससे हम शक्तिक्षय के साथ साथ गुलाम सन्तान पैदा कर रहे हैं। वर्तमान समयमें धुरन्धर विद्वान् और देश-हितचिन्तक नेता सन्तति-निरोध पर गला फाड़ फाड़ कर व्याख्यान दे रहे हैं, परन्तु कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा है। इसका सबसे सरल मार्ग यही है कि देशमें स्वरज्ञानके अध्ययनका प्रचार पूर्णरूपसे किया जाय, निःसन्देह जनसंख्यामें आजकलके समान निरर्थक बढ़ाव न होगा, और देशमें एक जागरूकता पैदा होगी।

इस विज्ञानके ज्ञाताके लिये करोड़ों रसायन व औषधियों का सेवन निरर्थक है क्योंकि इसके द्वारा वह प्रत्येक विमारीको आसानीसे पछाड़ सकता है । लक्ष्मी उसका चरणचुम्बन करेगी । आग बुझाकर करोड़ोंकी सम्पत्ति की रक्षा स्वरज्ञानी आसानीसे कर सकता है । इस प्रकार यह रहस्य शिव द्वारा पार्वतीको समझाया गया जो सर्व-सिद्धि-कारक है । इस शिव-कथनमें अणुमात्र भी सन्देह नही है, क्योंकि स्वयं शिव स्वरस्वरूप हैं ।

स्वरयोगसे एक लाभ यह भी है कि इसके अनुसार चलनेवाला पुरुष सयमी होजाता है । यथा- किसीको कोई पापकार्य करना है और उस समय उसका दाहिना स्वर और उचित तत्त्व नहीं चल रहा है, तो वह तुरन्त काम करने से रुक जायेगा । वाद में उचित स्वर आने तक उसकी पापधारणा वदल जायगी ।

इस ज्ञान द्वारा मनुष्य भविष्यकी प्रत्येक वात समझ सकता है । यह वात आगे चलकर आपको वतलाई जायेगी ।

स्वर ज्ञान आवश्यक क्यों ?

अव प्रश्न यह उठता है कि इससे लाभ क्या होता है ? इसका उत्तर सक्षेपमें यही है कि स्वरज्ञानी अपना भविष्य सुधार और विगाड़ भी सकता है । यदि मनुष्य भविष्यसे अनभिज्ञ रहता है, तो उसे इस ससार में अधिक ठहरनेकी जरूरत नहीं है । स्वरविज्ञानसे दूर

रहनेवालेका भविष्य सर्वथा अन्धकारमय होता है, ठीक समय पर उस पर आपत्ति आजाती है, जिसके चगुलसे वह निकल नहीं सकता, यदि वह इस समय विपत्तिसे वचनेका प्रयत्न करे तो भी अन्तमे विपत्तिका शिकार होकर ही रहता है। स्वर-ज्ञानी न तो अधिक शक्ति और वनका अपव्यय करताहै और न करने देता है। वह तो विपत्तिका पूर्वाभास पाकर उसका निराकरण पहलेसे ही सोच लेता है। उदाहरण स्वरूप यदि आप भारतवर्षके हिन्दू अपनी स्वर-विद्याको न भूल गये होते, तो वगाल और पजावके निरीह हिन्दुओं की निर्मम हत्या, गौ-वध, स्त्री-अपहरण आदि अमान-वीय अत्याचारोंको अपनी फूटी आँखोंसे भी न देखते। उन प्रान्तोंमें स्वर-ज्ञानियोंके अभावसे आज वहुसख्यक हिन्दू यदि भेड़ वकरियोंके समान तलवारके घाट उतारे गये तो कोई आश्चर्य नहीं। क्योंकि हम स्वर-ज्ञान रूपी अपनी चक्षु को कभी के फोड़ चुके थे। यह प्रकृति की देन हमेशा हमारे शरीरमें विद्यमान है। इससे लाभ न उठावे, यह हमारा ही दोष है। प्रकृतिका नियम अटल और सनातन सिद्ध है। इसपर अविश्वास करना अपने जीवित प्राणोंके अस्तित्व पर सन्देह करना है। यह स्वर या प्राण शिव स्वरूप है, और प्रकृतिका यह एक महान् तत्त्व है। इसके प्रमाण की कोई आवश्यकता नहीं, यह स्वत सिद्ध है। निम्नलिखित कहानी इसके प्रमाण पुरस्सरमें प्रस्तुत कर रहे हैं—

एक समयकी बात है कि प्राण, चक्षु, नासिका आदि सब इन्द्रियोंमें अपनी अपनी श्रेष्ठताकेलिये विवाद खड़ा होगया। नासिकाने कहा— मैं सर्वश्रेष्ठ हूँ। जीभ ने कहा कि- मैं। इसीप्रकार कान, ऑख आदि ने भी अपनी अपनी श्रेष्ठताका दावा किया। परन्तु इस अहमहमिकया मे कोई निर्णय न होने पर वे सब ब्रह्माजी के दरबारमें गई। उन्होंने कहा कि क्रमश शरीरमें से एक एक इन्द्रिय निकल कर देखले। यदि उसके अभावमे शरीरका काम चालू रहता हो तो उसकी कोई श्रेष्ठता नहीं और यदि शरीरसे बाहर निकलनेवाली इन्द्रियके अभावमे शरीरका व्यापार ठप्प होजाय तो उसी को प्रधान व श्रेष्ठ समझो। क्रमश सभी इन्द्रिया बाहर निकली, परन्तु शरीरका काम चलता रहा। अन्तमें प्राण जैसे ही अपना स्थान छोड़ने लगा और शरीरको पाच तत्त्वोंमें मिलाकर नष्ट करने लगा तब अन्य सब इन्द्रिया हाथ जोड़ कर प्रार्थना करने लगी कि-"हे प्राण। तू ही सबमें श्रेष्ठ और सर्वोपरि है। तू हमसे अलग न हो अन्यथा हमारा अस्तित्व ही न रहेगा"। साराश यह है कि प्राण ही सबसे श्रेष्ठ ठहरा। अत यह प्रमाणित होता है कि **प्रकृति में प्राण ही सर्वश्रेष्ठ और सार वस्तु है। यदि इससे कोई विज्ञान प्रमाणभूत प्रकट हो तो वह सर्वश्रेष्ठ ही होगा।**

सर्वश्रेष्ठ तत्व व उसके अनुसार फल

यह बात न्यायसगत भी है, क्योंकि जो वस्तु जैसी होगी उससे उत्पन्न वस्तु भी वैसी ही होगी। अत प्रकृति की उपेक्षा करना अपने आपको धोखा देना है। कई आदमी इस तथ्य पर कम ध्यान देते हैं-जैसे श्री रामचन्द्रजी भारद्वाज लिखित 'हस्त सामुद्रिक' में रेखाओंका वर्णन करते हुए कहते है कि—"रेखाओंको देखकर मनुष्य कहा करते हैं कि ये केवल झुर्रियाँ हैं। इनको पढकर किसीके भाग्यके विषयमें कुछ निर्णय देना मूर्खताके अतिरिक्त कुछ नहीं है।" पर वास्तवमें बात ऐसी नहीं है। प्रमाणके लिये इतना कहदेना ही पर्याप्त होगा कि प्रकृतिका कोई भी काम व्यर्थ नहीं होता। यह एक दूसरी बात है कि हम उसके गुप्तभेदोंको न समझ सकें, परन्तु उन्हें नि सार कहना हमारी अज्ञानताका द्योतक है, अर्थात प्रकाशको अन्धकार बताना है। अत यह सर्वथा ठीक है कि प्रकृति का कोई काम व्यर्थ नहीं होता और हाथकी रेखायें भाग्यनिर्णयमें प्रधान चीज हैं। इससे (प्राणसे) यदि कोई सार निकाल कर भविष्यका फल कहे तो उसकी श्रेष्ठताकी प्रशसा करनेकी जरूरत ही नहीं; क्योंकि यह तो एक स्वयंसिद्ध सिद्धान्त है, अर्थात् स्वरसे निर्णीत वस्तु की उपादेयता हमारे जीवनके लिये सर्वाधिक है।

संसारके प्राणियोंमें बहुतसी बातें एकसी मिलती हैं और वे भी अपने आप मिलती हैं। अत यह

सिद्ध होता है कि यह एक प्राकृतिक नियम है। उदाहरण स्वरूप चैत्र सुदी प्रतिपदा को सूर्योदय सौ मे से निन्यानवें प्राणियोंके बाये स्वरमें होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि ऐसा बाया स्वर आना प्राकृतिक है। यदि इस तथ्यको जानकर भी कोई इस स्वर-विज्ञानकी महत्ता न माने तो यह उसकी महामूर्खता है, अथवा उस नादान बच्चेके समान अज्ञानता है जो भविष्य-फलका ध्यान न रखकर आगमें हाथ रखदे। ऐसी अज्ञानता सिवा हठधर्मी के और कुछ नहीं है।

प्राणियों में स्वर की समानता

स्वर से दैनिक, पाक्षिक, मासिक (चन्द्रदर्शन से), वार्षिक फल का पता चलता है। स्वर के अनुसार घटनायें भी घटती हैं। इस विज्ञान द्वारा स्वरज्ञानी करोड़ों वर्षोंके भविष्यका फल भी करतलगत कर सकता है। यदि भविष्यमें कोई बुराई आरही हो तो उसका प्रतिकार भी किया जासकता है। यह विज्ञान हमेशा ही मानव जीवनमें सफलता ही सफलता प्रदान करता है। असफलताका नाम भी इस विज्ञान-वेत्ता के पास फटकने नहीं पाता।

दैनिक पाक्षिक आदि फल

स्वरविज्ञानकी ओर अग्रसर होनेमें मुझे प्राकृतिक लाभोंने अधिक आकर्षित किया। इस आकर्षणके कारण ही इस विषयमें मुझे अभिरुचि पैदा हुई। एक समय की बात

मेरा इसओर अग्रसर होना

है कि मैं एक परीक्षामे बैठने जारहा था, उस समय नासिका-स्वर पर जरा ध्यान दिया और उससे कुछ फल निकला। यद्यपि मैं उस समय इस नासिका-स्वरविज्ञान को जरा भी नहीं जानता था। बादमें मैं यदि किसीसे मिलने जाता तो दाहिने स्वरमे जाता तब तो मुझे सफलता मिलती और यदि बाये स्वरमे जाता तो या तो वह व्यक्ति मिलता ही नहीं और यदि मिल भी जाता तो कार्यमें सफलता न मिलती। इसका ज्ञान धीरे धीरे मुझे अपने जीवनमें हुआ। तबसे इस विषयको मैंने अपना विषय बना लिया। तदन्तर 'शिवस्वरोदय' और महात्माओं के संपर्क से इसका खूब अध्ययन और अपने जीवन पर क्रियात्मक रूपसे प्रत्यक्षीकरण किया।

शरीरमें नाड़ियोंका जाल बिछा हुआ है। उनका शरीर में महत्वपूर्ण स्थान है। इस विज्ञानके साथ भी नाडियोंका गहरा सम्पर्क है। नाडीभेद, प्राणतत्त्वोंका भेद और सुषुम्ना आदि से सम्बन्धित नाड़ियोंका ज्ञान वास्तविक मोक्ष प्राप्त

नाड़ी जाल

करना है। देहमें भिन्न भिन्न आकृतिकी नाडिया विस्तारपूर्वक फैली हुई है। अत ज्ञानी पुरुषकेलिये इस रहस्यको जानना बहुत ही आवश्यक है। नाभि-स्थानमे स्थित पुञ्जके ऊपर अकुरस्वरूप निकली

मूलस्थान व सख्या

हुई ७२००० नाडिया शरीरमें व्यवस्थित हैं। नाड़ियोंमे कुण्डलीशक्ति जिसके विषयमे विस्तारपूर्वक अन्तमें वर्णन किया गया है-

सर्पके समान सोती हुई स्थित है। उसके ऊपरकी ओर १० तथा नीचेकी ओर १० नाड़ियाँ निकली हुई हैं। उनमें १० तो प्रधान हैं और बाकी दस वायुको बहानेवाली हैं, और दो दो तिरछी गई हुई हैं। कुल २४ होती हैं। तिरछी अश्वत्थ नाड़िया वायु और देहके आश्रित हैं और देहमें चक्र के समान स्थित हैं, इसी कारण प्राणाश्रित हैं। इनमें भी तीन नाड़िया प्रधान हैं जो इडा, पिंगला और सुषुम्ना नामसे पुकारी जाती हैं। इनके स्वामी क्रमश चन्द्र, सूर्य और अग्नि हैं। गोरक्ष-पद्धति वर्णन करती है कि इन तीनोंकी जड़ मूलाधार चक्रकी कर्णिकाका त्रिकोण है। वामभागमें इडा, दक्षिणमें पिंगला और मध्यमें सुषुम्ना है- ये तीनों उक्त चक्रको अकमाल किये हुए हैं। अपनी अपनी ओरके नासिका छिद्र से बहती हैं। मध्यमें रहनेवाली सुषुम्ना नाड़ी मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक फैली हुई है। कुहू व शंखिनीकन्दसे अधोमुख होकर नीचेको गई है, और उर्ध्वमुख होकर ऊपर को गई है। दस प्रधान नाड़ियोंमें इन तीनोंके सिवा - गान्धारी, हस्ति-जिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अलम्बुषा, कुहु और शंखिनी हैं। इडा शरीरके वामभाग, पिंगला दक्षिण भाग, सुषुम्ना मध्यभाग, गान्धारी वामनेत्र, हस्ति जिह्वा दक्षिण नेत्र, पूषा दक्षिण कान, यशस्विनी वामकर्ण, अलम्बुषा मुख, कुहु लिंग और शंखिनी गुदा स्थानमें स्थित है। इस प्रकार ये नाड़िया शरीरमें व्याप्त हैं जिनका समर्थन डा रेले ने भी किया है।

इडा, पिंगला और सुषुम्ना शरीरके मध्यभागमे अवस्थित हैं। नाडियों के विषय में योगाक पृष्ठ ३६६ पर लेखक श्री प० त्र्यम्बक भासकर शास्त्री खरेके मतसे अवगत होना ठीक है। आपका कथन है कि वामनेत्रसे वामपादके अगुष्ठ तक चलनेवाली नाडी गान्धारी है। इसी प्रकार दक्षिण आँखसे दक्षिण पैरके अगूठे तक चलनेवाली नाडी हस्ति-जिह्वा है। सुषुम्नाकी दायीओर सरस्वती नाडी है, वह जीभके पास जाकर मिली है। दायी आँखसे पेट तक पूषा नाडी है। पूषा और सरस्वतीके बीचमे पयस्विनी नाडी है। गान्धारी और सरस्वतीके मध्यमें शखिनी है। दाहिने हाथके अगूठेसे बाये पैर तक यशस्विनी नाडी है। कुहू और यशस्विनी के बीचमे वारुणी नाडी है और उसकी व्याप्ति शरीरके निचले भागमें है। कुहू और हस्तिजिह्वाके बीचम विश्वोदरा नाडी है। वह भी वारुणी नाड़ीके समान शरीरके निम्नभागमें फैलीहुई है। सुषुम्नाके मध्यभागमे वज्रा नाडी है और वज्राके मध्यमे चित्रा नाडी है जिसके मध्यमे ब्रह्म नाडी है।

भिन्न भिन्न नाडियों के स्थान

इन दसों नाडियोंके आश्रित प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनजय-ये दस वायु हैं। इनकी स्थिति इस प्रकार है —प्राण-हृदय, अपान

वायुके भेद व स्थान

गुदा, समान-नाभि, उदान-कण्ठमध्य, व्यान सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त हैं। नाग वायु डकार लेनेमे, कूर्म वायु आँख खोलने मीचनेमे, कृकल छींक लेनेमे देवदत्त जम्भाई (उवासी) लेनेमे होता है। धनजय वायु सम्पूर्ण शरीरमे व्याप्त रहता है और मृत शरीरमें भी रहता है, जिसका समर्थन गोरक्षपद्धति भी करती है। इस विषयमें हमने डाक्टर रेलेका मत उद्धृत नहीं किया है क्योंकि वह अन्यत्र अंग्रेजीमें लिखदिया गया है। इस प्रकार ये जीवरूपी दस वायु सम्पूर्ण नाडियोंमें भ्रमण करते हैं। देहके बीचमें प्रकटरूप प्राणका सचार है। उसको ज्ञानी लोग इडा, पिंगला और सुषुम्नाके नामसे पहचानते हैं। इडामें चन्द्र, पिंगलामें सूर्य, और सुषुम्नामें शिवरूप स्थित है। बायी नाडीका प्रवाहकर्ता चन्द्रमा, शक्ति रूपसे, दाहिनी नाडीका प्रवाह करनेवाला सूर्य, शिवरूपसे स्थित है।

वायुके कार्यके विषय मे कुछ पद्धतियोंका भिन्न भिन्न मत है। घेरण्ड संहिताके मतमें —

वायु नाम	कार्य
१-कृकल	क्षुधा लाती है।
२-नाग	चेतना लाती है।
३-कूर्म	निद्रा लाती है।
४-धनजय	शब्द लाती है।
५-देवदत्त	जभाई लाती है।

१- प्राण वायु-हृदयमे रहकर श्वास को वाहर भीतर निकालती है तथा अन्नपानादिका परिपाक करती है।
२- अपानवायु-मूलाधार में रहकर मलमुत्र वाहर निकालने का काम करती है।
३- समानवायु- नाभिमे रहकर शरीरको शुद्ध रखनेका काम करती है।
४- उदानवायु- कठमें रहकर शरीर-वृद्धि करती है।
५- व्यानवायु- सर्वशरीर में लेना छोडना आदि अगके धर्म कराती है। शिवयोग शास्त्रके मतमें —
१- प्राणवायु मुख, नाक, हृदय नाभि, कुडलिनीके चारों ओर पादागुष्ठमें सदा रहती है।
अपानवायु- गुह्य, लिंग जानु, उदर पेडू, कटि और नाभिमें रहती है।
३- व्यानवायु- कान, नेत्र, कठ, नाक, मुख, कपोल और मणिवन्धमें रहती है।
४- उदानवायु- सर्वसन्धि तथा हाथ पैरोंमें रहता है।
५- समानवायु- उदराग्निकी कलाको लेकर सर्वांगमें रहता है। गोरक्ष-पध्दतिके अनुसार धनंजयवायु मृत्युके वाद चार घडी तक शरीरमें रहता है, परन्तु घेरण्ड सहिताका मत है कि यह शरीरको कभी नहीं छोडता।

डा रेले अपनी अंग्रेजी पुस्तक "मिरिटरियसकुण्ड-लिनी" में प्राणोंका स्थान निम्नप्रकारेण वताते हैं —

डाक्टर रेलेका प्राणोंके स्थानों के विषयमें मत

"उदान-कण्ठ (*Harynx*) के ऊपर है। प्राण गौणका स्थान दिलके आधार (*Base*) व कण्ठके बीचके स्थानमें है। समान नाभि और हृदयके बीचमें है। हमारा जीवन इसी पर निर्भर है। अपान-नाभिके नीचेके स्थानमें है। व्यान-सारे शरीरमें व्याप्त रहता है, और मास पेशियों के शिथिल और आकुँचन होनेके कारण शरीरमें जो गति उत्पन्न होती है उस पर शासन करता है और जोड़की चाल पर भी शासन करता है। तथा हमारे शरीरको सीधा रखने की क्षमता प्रदान करता है।"



द्वितीय प्रकाश

श्वास-प्रश्वास गतिज्ञान एवं ओम् शब्द की उपादेयता

इस अध्यायमें हम विशेषत श्वासप्रश्वासकी चाल का सम्यक्-रूपेण विवेचन करेंगे। इस विज्ञानका आधार हरेक मनुष्यके नथुनोंसे चलते हुए श्वास-प्रश्वासकी गति पर ही निर्भर है। वैसेतो यह बात बडी साधारण-सी जानपडती है, परन्तु इसकी गति कितनी गहन व रहस्यपूर्ण है, इसका पता उस समय चलता है, जब कोई इसकी सहायतासे कार्य सिद्धि करलेता है। इसकी तात्कालिक शक्ति और सामर्थ्य देखकर कोई भी आश्चर्यान्वित हुए बिना न रहेगा। प्रत्येक मनुष्य की क्रिया, उससे उत्पन्न सुख-दु ख-द्वन्द्व शारीरिक और मानसिक व्याधि आदि सभी कार्य इससे पूर्ण प्रभावित हैं। इसके द्वारा सुखप्राप्ति और दु खनिवृत्ति की जा सकती है। साराश यह है कि यह स्वर मानवशरीर-रूपीरथका सचालक एव सूत्रधार है।

स्वरोदय विज्ञान या श्वासोच्छ्वास गतिका ज्ञान

इस विज्ञानका सूर्योदयके साथ गहरा सपर्क है। इससे हर आदमी चौबीस घण्टेकी घटनाओंका सन्देश पहलेही ध्यानस्थ करसकतो है। सूक्ष्मातिसूक्ष्म बातका ज्ञान दिनमें समय समय पर श्वास-प्रश्वासकी चालसे ज्ञात होसकता है। यदि सूर्योदयके स्वरके समय स्वरकी गति नियम विरुद्ध चले तो आगामी विपत्तिकेलिये सावधान होकर उसके निराकरण का उपाय उसी समय सोचलेना चाहिये। यदि सूर्योदयके समय स्वर नियम विरुद्ध चलरहा है तो उसे उपयुक्त या स्वपक्षमे करने के लिये एक घण्टे तक ॐ मन्त्रका जाप अवश्य करना चाहिये, इससे अत्यधिक मन शक्ति प्राप्त होगी। उस मन शक्तिके बलसे ही हम आनेवाले कष्टसे मुक्त हो सकेंगे।

सूर्योदयसे इसका विशेष सम्बन्ध

ओम शब्दके विषयमें हमारे प्राचीन ग्रन्थोंमें बहुत विशद विवरण मिलता है और इसकी महिमाके बारेमें अनेक ग्रन्थ रत्न भरे पडे हैं। इसकी उत्पत्ति भी वैज्ञानिक रहस्यसे परिपूर्ण है। कहा जाता है कि ईश्वरने मत्स्यावतारसे राक्षसका नाश कर ससारको वेदोंका दिग्दर्शन कराया। साधारणतया लोग इसका यही शाब्दिक अर्थ लेते हैं, परन्तु इसमें कुछ और ही गूढ रहस्य छिपा हुआ है। स्वामी रामतीर्थ ने लिखा है कि शंखस्थित कीडेसे वेदोंका पुनरुद्धार किया गया। ईश्वरने मत्स्यावतार धारणकर उस समुद्रके कीडे

ॐ शब्दकी उत्पत्ति तथा उसकी वैज्ञानिकता

को लड़कर मारडाला। समुद्रकी लहरे खाली शखको किनारे पर ले आई। शखको मनुष्यने प्राप्त किया और वजाया जिससे ॐ शब्दकी उत्पत्ति हुई। यह ॐ शब्द ही वेदान्त है जो हमें समुद्रसे प्राप्त हुआ है, ज्ञानकी यह अन्तिम सीढी है। इसी कारण हिन्दू ससार ॐ शब्दको अपने अनेक अवसरों पर यथा- जन्म, मृत्यु, यज्ञ, पूजा आदि पर उच्चारण करता है। यही हिन्दूजनता ॐ जैसे महान् वेदान्तको प्राप्तकर पूर्णसुखी है किम्वहुना हिन्दू ससार पूर्णत' ॐ शब्दसे ओत-प्रोत है। इससे आन्तरिक रहस्यों व उच्चातिउच्च अमूल्य सासारिक ज्ञानप्राप्ति होती है। आदमी जव अधिक सुखी होता है तो स्वभावत ही उसके अन्तर्प्रदेशासे ओ ओ की आवाज निकलती रहती है। इसी प्रकार विमारी या दु खकी अवस्थामे भी मानवहृदयसे ॐ ॐ की ध्वनि निकला करती है। हिब्रू, अरेविक और अग्रेजी प्रार्थनायें अमनसे ही समाप्त होती है। ग्रीक भाषाका अन्तिम वर्ण ओमेगा है जो ओम की प्रधानध्वनिको लिये हुए है। ॐ सर्व-व्यापक-स्थिति के अध्ययनसे मनुष्यको परमानन्द मिलता है। यद्यपि ॐ शब्द हिन्दू जातिका विज्ञान है परन्तु यह उस सुन्दर वृक्षके समान है जिसकी ठण्डी छायामें विश्वका प्रत्येक प्राणी विना किसी भेदभावके आश्रय पाकर अपने शरीरको शीतल करसकता है। इसी प्रकार इस ॐ शब्दसे विश्वका प्रत्येक प्राणी अपने को आध्यात्मिक विभूतियोंसे विभूषित कर सुखी होसकता

है। हम इसे प्रणव कहते हैं, क्योंकि यह प्राणमें से ध्वनित होकर निकलता है। तेज श्वास लेने पर यह शब्द "सोऽहं" या ॐ के रूपमें शरीरमें से हर मानवको ज्ञात होता है। इस प्रकार ओम् शब्द सासारिक प्राणियोंका एक अविच्छिन्न अङ्ग है। यह समस्त ससारको अपनेमें लपेटे हुए है।

यद्यपि तान्त्रिक, वैष्णव, शैव व अन्यान्य हिन्दू-धर्मावलम्बी इसका भिन्न भिन्न अर्थ लगाते हैं, परन्तु वेदान्तका मूल ॐ–जिसमें 'अ उ और म्" का समिश्रण है—की महत्ता को सभी स्वीकार करते हैं। वेदान्तके अनुसार ध्वनि "अ" में-सक्षिप्त सासारिक पदार्थवाद (*material universe*) जो जागृत अवस्थामें है–का भान होता है। स्वप्नावस्था के सारे अनुभव "उ" द्वारा ही प्रदर्शित होते हैं। "उ" मानसिक या सूक्ष्म लोक, प्रेत व स्वर्ग लोकका सूचक है। "म्" अक्षर गहरी निद्रावस्था और अज्ञात ससारका द्योतक है।

इस प्रकार ॐ शब्दमें मानव जातिकी तीन अवस्थाओं का ज्ञान निहित है। पाश्चात्य दार्शनिक ॐ शब्दके "अ" अक्षर (जागृतावस्था) का ही अनुभव करके सारे अन्वेषण व आविष्कार कर रहे हैं। पौर्वात्य ससारके विद्वान "उ" और "म्" अक्षरों (स्वप्न वा निद्रावस्था) के अनुभव से ही अन्वेषण कर आविष्कार करते हैं। जिससे दर्शन शास्त्र पूर्णता को प्राप्त होते हैं। किन्तु ॐ शब्दको प्राप्त करनेमें पूर्ण आत्मा

ही समर्थ होती है, क्योंकि इन्द्रियज्ञान केवल जागृतावस्था तक ही सीमित नहीं है। जागृत, स्वप्न और सुषुप्तिमे वास्तविक आत्मा निरन्तर सचार करती रहती है। यही वास्तविक ॐ है।

प्रश्न उठ सकता है कि इस मन्त्रके जापसे इतना आत्म-बल कैसे प्राप्त होजाता है ? और विरुद्ध स्वरका प्रभाव प्राय क्यों नष्ट होजाता है ? इसका प्रधान कारण यह है कि-प्रथम तो यह शब्द प्राकृतिक है, और हरेक देशके बच्चे इसी शब्दसे मिलते जुलते शब्द-अम्मा, अम्म, अम् ममी और ओम् आदि-उच्चारण करते हैं। गूगे भी इसका प्रयोग कर-सकते हैं। विश्वके प्रत्येक-धर्म और भाषामें तद्वत् शब्द व्यवहारमें आते हैं जैसे अमन • आदि। यह शब्द ही पूर्ण विज्ञान-स्वरूप है। इस शब्दके शुद्ध हवामें उच्चारण करने मे श्वासकी गति प्राकृतिक रूपमे परिणत होजाती है। यदि इसमें सन्देह होतो कोई भी शुद्ध हवामें क्रियात्मकरूपेण इसकी उपादेयता समझ सकता है। यदि पॉच मिनटतक प्लुत उच्चारणसे ॐ ॐ का उच्चारण किया जायतो विदित होगा कि श्वासका व्यायाम होरहा है, तथा श्वासकी उर्ध्वगति होरही है। फिर कतिपय पलोंके बाद पूरा श्वास लेना पडता है। इस प्रकार यह प्रमाणित होता है कि सूर्योदय कालीन स्वर प्रकृतिके विरुद्ध था और ॐ शब्दके जापसे नियमानुसार काम करने लगा। इस प्रकार यदि श्वास नियमानुसार काम करने लग जाय तो शेष रह ही क्या जाता है। स्वर-शुद्धिसे शरीर उचितमात्रामें काम करने लगजाता है। अत ॐ मन्त्र

हमारे मानवधर्मका आदि अक्षर होनेके साथ साथ स्वास्थ्य प्रद एव वैज्ञानिक है, क्योंकि इसके उच्चारणसे मानवशरीरकी अखिल इन्द्रिया सक्रिय होजाती हैं। इसके उच्चारणसे कण्ठ, मुँह और उदरभागमें शुद्ध हवाका आगमन और वन्द करते समय नासिकासे अशुद्ध हवाका निराकरण होजाता है। ॐ मन्त्रकी आदि ध्वनि "अ' से कण्ठ "उ" से उदर और "म्" से ओष्ठ भागमें सक्रियता आती है। अर्थात् 'अ" और "उ" द्वारा कण्ठ एव उदरभागमें शुद्धहवा प्रविष्ठ होती है तथा 'म्" से वह शरीरमें वन्द होजाती है। अशुद्ध हवाके बाहर निकलनेका मार्ग नासिका है। इसके स्थानमें दूसरा कोई शब्द नहीं रक्खा जासकता। इन्हीं सब गुण विशेपताओं के कारण यह ईश्वरस्वरूप एवं शक्तिमान कहागया है। यह सो ऽहं का शुद्ध स्वरूप है। क्योंकि व्यजन उड़ने पर स्वरूप ॐ ही रह जाता है। वेदान्त हजारों वर्षोंसे इसकी महत्ता बताता आरहा है, परन्तु आज पाश्चात्य सभ्यताकी चकाचौंधमें चौंधयायी हुई भारतीय जनताने अपनी इस अमूल्यमणिको कठसे हटाकर फासीके समान अन्य आभूषणों को गले लगाकर यदि आत्मघात करनेमें प्रवृत्तिकी तो आश्चर्य ही क्या है। इस मन्त्रके सतत उच्चारणसे प्रतिक्षण श्वास-प्रश्वासकी गतिकम होती है। श्वास-प्रश्वासकी गति कम होनेसे आयुका स्वयमेव वर्धन होता है। मानसिक जापसे अत्यधिक वल और जोरसे उच्चारण करनेपर शारीरशक्तिका पूर्णरूपेण अभ्युदय होता है।

तृतीय प्रकाश

स्वरोदयका ज्ञान

स्वर हमेशा दोनों नथुनोंसे बराबर नहीं चला करता। प्रकृति व शरीरका यह नियम है कि स्वर कभी किसी और कभी किसी नथुनेसे चलाकरता है। पर इसका रहस्य इने-गिनोंको ही ज्ञात होता है। परन्तु यह क्रमश अलग अलग नथुनोंसे—यदि शरीर में कोई बाधा उपस्थित न होतो—चला करता है। यह एक इतना अटल ईश्वरीय नियम है कि एक निश्चित्त समय तक स्वर एक नथुनेसे चलनेके बाद अन्य से अपने आप चलने लग जाता है। **नासिकासे आने जाने की श्वास-प्रश्वास क्रियाको स्वर** कहते हैं। संस्कृत भाषा

स्वर तथा उसका उदय

स्वरकी परिभाषा व उसका उदय

में स्वर शब्दकी व्युत्पत्ति वैज्ञानिक ढगसे बड़ी सरलतासे समझाई गई है—अर्थात्— स्व=रमते= क्रीडति-स्वेच्छया गच्छति वा इति स्वरम्, यानि जो अपने आप चले वही स्वर कहलाता है। यदि एकनथुनेसे दूसरे नथुनेमें स्वर चलाजायतो उसे "उदय" कहते है। जब एक स्वर—अर्थात शरीरके एक भागकी नाड़िया काम करती हैं तो दूसरे भागकी नाड़िया आराम करती हैं। यदि इसमें ज्यादा कम होतो गड़बड़ होजाती है, क्योंकि जिस अगका स्वर चलता है उस अंगका फेफड़ा अधिक हवा लेता है, अर्थात् चालूस्वरवाले अगका फेफड़ा विशेष रूपसे वायुको खींचता है और रुधिरका प्रवाह भी उसओर ही विशेष रूपसे होता है, उस समय ही प्रवाह द्वारा रुधिर शुद्ध होता है।

ज्ञातहो कि जितना देरतक एक स्वर अधिक चलता है उतनी देर तक दूसरेका काम रुकजाता है। यदि बिना स्वर वाले फेफडेमें वायु प्रवेश न करेतो उसे अधिक परिश्रम करना पड़ता है और परिणाम स्वरूप वह खराब होजाता है, क्योंकि जिस फेफडेमें वायुका प्रवेश नहीं होता या कम होता है उसमें कोई न कोई विकार अवश्य होजाताहै।

जैसे स्वरका चलना फेफड़ों पर बतलाया है, वैसेही हृदय व नाडियों पर जानना। क्योंकि वायुका फैलाव नाडियों के आश्रयमें है। इसका प्रमाण यह है कि नाड़ियों पर दबाव पड़नेसे स्वर बदल जाता है।

उड्डियानवन्धमें सुषुम्ना स्वर होजाती है, क्योंकि सुषुम्ना पर आन्तका दवाव पडता है। यह शरीरके मध्यमे-नाभिसे लेकर कण्ठ पर्यन्त है। आमतौरसे यह नाभिपर देखी जाती है, जिसको धरण कहते हैं। जिसओरका फेफडा खराब होगा उधर वायु भली भान्ति नहीं जायगी। अनुभवसे ज्ञात होगा कि उसओरका स्वर कमजोर होजायगा और अग्नितत्त्व आदि को लेकर होगा।

सुषुम्ना स्वर प्राणायाम व उड्डियानवन्ध से होसकता है। दौड़ने व पहाड पर चढनेसे भी यही हाल होसकता है, क्योंकि उस समय बहुत-सी हवा अन्दर जाती है और सब नाडियों भी हवासे भर जाती हैं। जब उनमे स्थानाभाव हो जाता है तो रुधिरसे मिली हुई हवाका धक्का वापिस आता है जिससे दोनों स्वर पूर्ण होजाते हैं, उस समय मालूम होता है कि खूनका दौरा मामूली हालत पर आगया है और सब कमजोरी दूर होगई है। जब प्राणायाममे सुषुम्ना प्रकट होतो समझना चाहिये कि इडा, पिंगलाका मार्ग मलरहित होगया है। जैसे पुस्तकोंमें लिखा गया है कि-सुषुम्नामें समाधि लगती है तो उड्डियानवन्धमें रुधिरका धक्का उलटा होजाता है-अर्थात् सुषुम्ना पर दवाव पहुँचनेसे ऊपर दिलकी ओर जाता है और सचार पैदा होजानेसे गफलत यानि समाधि पैदा करता है।

निम्नलिखित प्रकारसे इसकी स्थितिका ज्ञानकरना सरल है—

शरीर = खेत।

रुधिरकी नाडी = क्यारी ।

दिल = पानीका हौज ।

अर्थात् - दिल रूपी पानीके हौजसे क्यारी रूप नाड़ियोंमे रुधिर रूप पानी जायगा और जब क्यारियां भरजायगी वह वापिस आने लगेगा। यही हाल सुषुम्नाका होगा। जब आकाशतत्त्व होता है तो दोनों फेफडे बराबर काम करते हैं, किन्तु वायुका प्रमाण बन्ध जाता है। जो हवा पहले एक ओर विशेषरूप बहती थी उसका प्रवाह आकाशतत्त्वमें सम होजाता है जिससे दोनों भागोंमें हवा पहुँचने लगजाती है और रुधिरका सचार सुस्त पड जाता है। इससे रुधिर शुद्धिमें भी कमी आजाती है और उच्चाट पैदा होजाता है। इसी प्रकार सुषुम्नाके विषयमें भी जानना चाहिये।

दाहिना फेफड़ा बायेसे बड़ा है उसमें वायु व रुधिर अधिक रहता है। शरीरके समस्त व्यवहारोंमें दाहिना अङ्ग अधिक काम आता है। इस कारण इस अङ्गमें खून व हरारतकी अधिकता रहती है। जैसे दाहिने स्वरको क्रूर कहा है वैसे ही बलवान भी। दाहिना अङ्ग बाये अङ्गसे अधिक बलवान है।

जिगर (यकृत) सूर्यलोक है, अर्थात अग्निका कोठा है। जैसे सूर्य अपनी किरणों द्वारा सब पदार्थोंके अंशोंको खींचता है, वैसे ही यकृत भोजनके सारे अंशको खींचकर पित्त द्वारा हल करता है और रुधिरमें सम्मिलित करदेता है।

चन्द्रमा या चन्द्रलोकका भावार्थ पक्काशयसे है, जिसमे अन्न खाते ही पडजाता है और उसी समय उसमे पाचनक्रिया प्रारम्भ होजाती है। जैसे चन्द्रमामे जल खींचनेकी शक्ति है वैसे ही पक्काशयमे अर्क (भोजनका पतला अ श) और पानी के शोषणकी शक्ति है और ,उसे रुधिरमें मिलानेका कार्य भी वही करता है। पक्काशयकी बारीक नाडियों द्वारा शोषण करनेवाले चन्द्रमा या चन्द्रलोकको अंग्रेजीमें वैपी लेरी (*capilearis*) और योगशास्त्रमें सरस्वती तथा कई लोग नागिनी भी कहते हैं। पक्काशयको जलका भण्डार कहते हैं, क्योंकि इसीके सहारे सारे शरीरमें जल फैलता है। जैसे सूर्य-चन्द्रमा ससारमे प्रकाश करते हैं वैसे ही यकृत व पक्वाशय सारा खेल शरीरमें करते हैं।

जब दोनों फेफडे थोडे थोडे खराब होंगे तो वायु अग्नि और आकाशतत्त्वोंमे से किसीकी चाल होगी। कुछदिन बराबर ऐसा होनेसे मृत्यु होजायगी। गुजराती (निमोनिया) राजयक्ष्मा आदि बिमारियोंमें प्राय ऐसा होता है। मृत्यु समयमे मनुष्य का प्राणवायु बन्द होजानेसे स्वर नहीं चलते, केवल मुँहसे ही श्वास आता जाता है जिससे चार घडीमें मृत्यु होजाती है। निर्बलतत्त्वों (अग्नि, वायु, आकाश) में स्त्री प्रसग करने से मनुष्य नपुँसक होजाता है। आदिसे अन्त तक ही स्वर रहना गर्भधारणकेलिये आवश्यक है। हमारे पूर्वज ऋषि-मुनि इस ज्ञानके ज्ञाता होनेसे इससे सम्पूर्ण लाभ उठाते

थे और उनके लिये यह एक साधारण बात थी; परन्तु आज उन्हीं ऋषियों की सन्तानोंका यह ज्ञान तो दूर रहा, वे इससे परिचित तक नहीं है और वे यह भी नहीं जानते कि हम इस पैतृक सम्पत्तिके अधिकारी हैं।

पूर्वजोंके अनुभवमे जो जो रहस्य देखनेमें आये और जिनको लेकर मैंने स्वयं जो कुछ थोड़ा बहुत अनुभव किया है, उसका मैं विवेचन कर रहा हूँ। वैसे तो मूलसिद्धान्त सारी पुस्तकोंमें एकसे ही मिलते हैं परन्तु कई विषयों पर कुछ पुस्तकोंमें भिन्न भिन्न मत हैं। अतः उन सबका सुचारु रूपसे कारण सहित परिणाम निकाल कर पाठकोंके सामने रखनेका प्रयत्न कर रहा हूँ। इसके चलनेका नियम, अवधि, जाननेकी विधि, चन्द्र सूर्य स्वरमें पाच तत्त्व, हर तत्त्वोंमे बारी बारीसे अन्तर, उनका प्रभाव हर प्रकारका भेद, विचार, आधि-भौतिक, आधिदैविक आदि कार्य करने का समय, पुरुष और स्त्रीके स्वरोंमे भेद, सासारिक सुख दु ख, रोग, प्रश्नोत्तरी आदि पर विचार किया जायगा। इनका अनुभव करते समय मुझे जो विशेष अनुभव प्राप्त हुआ है उसका भी विशदरूपसे आगे वर्णन किया जायगा। साथमें स्वरोंमें तत्त्व व अन्तरतत्त्वकी अवधि एवं उसके चलनेका क्रम किस प्रकारसे होता है उसका पूर्णरूपसे आगे विचार किया जायगा।

स्वरके विषयमें मूल सिध्दान्त व तत्त्व आदि



चतुर्थ प्रकाश

स्वरोंका तिथियोंके साथ मेल

स्वर साधारणतया चन्द्र और सूर्य नाडीमें से ही नियमानुसार चला करता है। कई क्षणोंमें यह स्वर सुषुम्ना नाडीमें से बहने लगजाता है। शुक्ल पक्षकी १, २, ३, ७, ८, ९, १३, १४, १५ और कृष्ण पक्षकी ४, ५, ६ १०, ११, १२ सूर्योदयसे लेकर कुछ समय तक चन्द्र नाडीसे स्वर चलता है, जिसको बाया स्वर या चन्द्रस्वर कहते हैं, और यही इडा नाडी है। कृष्ण पक्ष

स्वर चलनेके नियम

सूर्य चन्द्रकी नाडीमें स्वरका २॥ २॥ घडी तक तिथि क्रमसे चलना

की अमुक तिथियों १, २, ३, ७, ८, ९, १२, १४, १५ (अमावस्या), शुक्ल पक्षकी अमुक तिथियों ४, ५ ६, १०, ११, १२ मे पिंगला नाड़ीमें से सूर्योदयसे कुछ समय तक दाहिना स्वर चलता है। प्रत्येक नासिकासे २॥ घडी (२॥ घडी = १ घण्टा), २॥ घडी श्वासोच्छ्वास प्रचलनकी अवधि मानीगई है। इस मत पर बाबू ब्रजमोहनलाल वर्मा बी ए विपरीत राय देते हैं। सम्भव है भूल होगई हो, क्योंकि आपने अपनी पुस्तक 'ब्रह्मयोग विद्या' में एक नाड़ी से श्वास-प्रश्वासकी स्थिति ५ घड़ी बतलाई है। परन्तु मेरे अनुभव और अन्य इस विज्ञान वेत्ताओंके अनुभवने सिद्ध करदिया है कि एक नाड़ीमें स्वर २॥ घड़ी ही चलना चाहिये। इसके प्रमाणकी कोई आवश्यकता नहीं, पाठक स्वय ही अनुभव करे।

इस विषयके प्रामाणिक ग्रन्थ 'शिव स्वरोदय' के ६३ वे श्लोकमें लिखा है कि स्वर २॥, २॥ घटी एक दिन में २४ बार बहता है। इस प्रकार बाये दाहिने स्वरोंकी १२, १२ आवृत्ति होती हैं। यथा —

> सार्ध द्विघटिके ज्ञेय शुक्ले कृष्णे शशी रविः।
> वहत्येकदिनेनैव यथा षष्टि–घटि–क्रमात ॥

योगाक पृष्ठ ३९९ पर पण्डित त्र्यम्बक भास्कर शास्त्रीखरे 'शिव स्वरोदय' का उद्धरण देते हुए लिखते हैं कि प्रत्येक

चतुर्थ प्रकाश

स्वरोंका तिथियोंके साथ मेल

स्वर साधारणतया चन्द्र और सूर्य नाड़ीमें से ही नियमानुसार चला करता है। कई क्षणोंमें यह स्वर सुषुम्ना नाड़ीमें से बहने लगजाता है। शुक्ल पक्षकी १, २, ३, ७, ८, ९, १३, १४, १५ और कृष्ण पक्षकी ४, ५, ६ १०, ११, १२ सूर्योदयसे लेकर कुछ समय तक चन्द्र नाडीसे स्वर चलता है, जिसको बाया स्वर या चन्द्रस्वर कहते हैं, और यही इड़ा नाड़ी है। कृष्ण पक्ष

स्वर चलनेके नियम

सूर्य चन्द्रकी नाडीमें स्वरका २॥ २॥ घड़ी तक तिथि क्रमसे चलना

की अमुक तिथियों १, २, ३, ७, ८, ६, १२, १४, १५ (अमावस्या), शुक्ल पक्षकी अमुक तिथियों ४, ५ ६, १०, ११, १० मे पिंगला नाडीमें से सूर्योदयसे कुछ समय तक दाहिना स्वर चलता है। प्रत्येक नासिकासे २॥ घड़ी (२॥ घड़ी = १ घण्टा), २॥ घडी श्वासोच्छ्वास प्रचलनकी अवधि मानीगई है। इस मत पर बाबू ब्रजमोहनलाल वर्मा बी ए विपरीत राय देते हैं। सम्भव है भूल होगई हो, क्योंकि आपने अपनी पुस्तक 'ब्रह्मयोग विद्या' में एक नाडी से श्वास प्रश्वासकी स्थिति ५ घडी बतलाई है। परन्तु मेरे अनुभव और अन्य इस विज्ञान वेत्ताओंके अनुभवने सिद्ध करदिया है कि एक नाड़ीमें स्वर २॥ घड़ी ही चलना चाहिये। इसके प्रमाणकी कोई आवश्यकता नहीं, पाठक स्वयं ही अनुभव करे।

इस विषयके प्रामाणिक ग्रन्थ 'शिव स्वरोदय' के ६३ वे श्लोकमें लिखा है कि स्वर २॥, २॥ घटी एक दिन में २४ बार वहता है। इस प्रकार बाये दाहिने स्वरोंकी १२, १२ आवृत्ति होती हैं। यथा —

साधं द्विघटिके ज्ञेय शुक्ले कृष्णे शशी रविः।
वहत्येकदिनेनैव यथा षष्टि-घटि-क्रमात ॥

योगाक पृष्ठ ३६६ पर पण्डित त्र्यम्बक भास्कर शास्त्रीजीने 'शिव स्वरोदय' का उद्धरण देते हुए लिखत हैं कि प्रत्येक

नाड़ी २ घण्टे २४ मिनट चलती है। तदनन्तर दूसरी नाड़ीका चलना प्रारम्भ हो जाता है और भोजनके समय चन्द्र नाडी और प्रात काल या साय-कालमें ४ घण्टे ४८ मिनट तक आकाश तत्त्व ही स्थिर रहता है उस समयको सधिकाल कहते हैं। आकाश तत्त्वके उदयके समय अथवा पृथ्वी तत्त्वके उदयके समय दो तीन मिनट तक सम-स्वर रहते हैं यह सुषुम्ना नाडी है। इस नाडीको ऐसी ही स्थिर करके प्राणायाम किया जावे तो एक अद्वितीय सिद्धि होती है। यही प्राण जप है। नाडी शुद्धिके उपरान्त धौति, वस्ती, नेति, नैलि, त्राटक, कपाल-भाति, ये षट् कर्म वतलाये हैं। इस वर्णन में पडितजी ने प्रत्येक नाडीका स्थिरी-करण जो २ घण्टे २४ मिनट बनाया है वह गलत है क्योंकि इसका प्रमाण अन्य किसी ग्रन्थमे उपलब्ध नहीं होता व यह मेरे अनुभवके भी विपरीत है। चन्द्रस्वरमें भोजन करनेका विधान लिखना भी असगत है क्योंकि वह भी प्रमाण रहित है। सम्भव है छपनेमे भूल होगई होगी।

त्र्यम्बक शास्त्री खरेका मत

इससे यही सिद्ध होता है कि साधारण रूपसे प्रत्येक नथुनेसे २॥, २॥ घडी की आवृत्तिसे स्वर चलना चाहिये।'
कई ग्रन्थकारोंने सूर्योदयके समय स्वरक्रम चलनेकी बात

स्वरकी गति वारों पर आश्रित नहीं अपितु तिथियों पर आश्रित है।

वारों पर आश्रित मानी है, परन्तु यह मत भी समीचीन नहीं जान पड़ता, क्योंकि वारों पर सोम, बुध, गुरु, शुक्र को चन्द्र स्वर और मङ्गल, रवि, शनि को सूर्य स्वर चलेगा, इसका कारण यह है कि चन्द्र स्वरके उपरोक्त चार वार हैं और सूर्यके तीन। इस प्रकार समान विभाजन न हो सकेगा। इसके विपरीत तिथि-क्रममें सम सन्तुलन होजाता है। वारोंके अनुसार स्वर-क्रम चलनेसे फलमें गड़बड़ी पड़जाती है। अर्थात् फल ठीक नहीं मिलता, तथा तिथि क्रम प्रकृतिसे शुद्ध सिद्ध होता है, क्योंकि स्वर-क्रमकी परीक्षा मैंने सूर्योदयके समयसे मिलाकर कई पुरुषोंपर की, जिससे तिथि-क्रम ठीक प्रमाणित हुआ। मैं अपने अनुभवके आधार पर कह सकता हूँ कि तिथि-क्रम सर्वथा समीचीन और सगल है तथा वार क्रम बिलकुल अनुपयुक्त ठहरता है।

तिथि और स्वरका घनिष्ठ सम्पर्क होना, अपनी एक विशेषता रखता है और मैं भी इस पक्षका अनुयायी हूँ कि ऋषि महर्षिगण सूर्योदयके साथ साथ अपने अनुभव द्वारा उस दिनकी तिथिका ज्ञान करलेते थे।

तिथिका स्वरसे निकास

पाठकों को ज्ञात होना चाहिये कि तिथियों का क्रम शरीरसे ही उत्पन्न हुआ है। यदि पूर्वजोंके स्वरमें व्याघात पड़जाता तो वे स्वयं समझ लेते थे

कि आज अमुक तिथि टूटगई है, क्योंकि शुद्ध पुरुषके स्वर प्रकृतिके अनुसार चलते हैं। इस प्रकार तिथि ज्ञानके अनन्तर गणित ज्योतिष का ज्ञान हुआ।

स्वरसे भविष्य ज्ञान

इसी प्रकार आज भी यदि कोई आदमी उस कुछ कष्ट साध्य और स्वयके ज्ञानगम्य विषयका सुवह प्रत्यक्षी-करण करे तो नि सन्देह वह दैनिक पाक्षिक, मासिक, वार्षिक और अनन्त भविष्यका ज्ञान पहले ही कर सकता है। हमारे प्राचीन स्वर ज्ञाता महर्षि केवल प्रति दिनका ज्ञान ही नहीं किन्तु प्रतिपदा तिथिके सूर्योदयसे पक्षका और वर्षारम्भकी प्रतिपदा तिथिसे सारे वर्षका ज्ञान वता सकते थे। इतना ही नहीं वे तो इस विज्ञान की शक्तिके सामर्थ्यसे सैकड़ों, हजारों और लाखों वर्षोंका भविष्य वता सकते थे। इस प्रकार इस विज्ञानके जानकार भविष्यके गर्भ मे छिपी अपनी सफलताओंको देख लेते थे।

शासकवर्गको इस की आवश्यकता

यदि अब भी इस ओर उदासीन भारतके विज्ञान-पिपासुजन अपनी अपनी प्रवृत्ति उन्मुख करें और विशेषत शासक वर्ग इसकी विशेषताओंके रहस्यको जानकर शासन करे तो वह शासितोंका सबसे वड़ा शुभचिन्तक होगा। वह अभीसे महामारी, बाढ़ आदि उपद्रवोंके शमनका उपाय सोचकर अपने देशको अमन चैनमें रखकर 'प्रजाहित व्रती' पद का न्यायत अधिकारी होसकता है।

पंचम प्रकाश

स्वरमें श्वास जानने की विधि एवं पंच तत्त्व

किस समय कौनसा स्वर चलरहा है, इसका वर्णन पिछले अध्यायमें कर चुके हैं। अब यह देखना है कि चन्द्र एव सूर्य-स्वरोंमें से कौनसा कब चलरहा है? इसका ज्ञान तो सहज है, परन्तु इनमें तत्त्व पहिचानना सबमें कठिन काम है। क्योंकि इन तत्त्वोंमें अन्तर और प्रत्यन्तरको ज्ञान अनुभवसे प्राप्त होता है। स्वरमें प्रतिक्षण (विपल) का ज्ञान भी आवश्यक है। अत इस विषयके ज्ञान-पिपासुको छोटे से छोटे समयके अंशका ध्यान रखना जरूरी है। उदाहरणार्थ हम गर्भका प्रश्न सामने रखते हैं। इसमें यह देखनेमें आया है कि पशु पक्षियोंकी बात ही क्या, मानवप्राणियोंके भी एक साथ दो बच्चे (लड़का, लड़की) पैदा होते देखे जाते हैं। इससे ज्ञात

स्वरोंमें प्रतिक्षण का ज्ञान आवश्यक क्यों?

होना है कि प्रथम चरणमें गर्भमे लडका और दूसरे चरणमे लड़की की स्थितिका आधान हो गया। अत विषयके चरण और प्रति चरणका वारीक अध्ययन आवश्यक है।

सूर्य और चन्द्र नाड़ीके पहचाननेका सरल उपाय यह है कि जिस नसकोरेसे आसानीसे श्वास चलरहा हो या एक के बन्द करनेसे दूसरे नसकोरेसे श्वास लेनेमें रुकावटसी जान पडे तो प्रथमको खुले स्वर वाला नथुना और दूसरे नथुनेको बन्द स्वर वाला जानना चाहिये। जब इस विज्ञान

सूर्य एव चन्द्र नाडीकी पहिचान

जीव स्वरकी ओरकी आतड़ियोंमें शक्तिका भान

है और उधर स्फूर्ति अधिक जान पड़ती है। डा० रेले अपनी अंग्रेजी पुस्तक 'मिस्टीरियस कुण्डलिनी' के तीसरे अध्यायमें नाड़ी आदिका वर्णन करते हुए लिखते हैं कि इड़ा मेरु दण्डके बायीं ओर तथा पिंगला दायीं ओर रहती है। परन्तु साथमें उनका यह भी लिखना है कि इडा दाहिने नसकोरे और पिंगला बायें नसकोरे में समाप्त होती है। यह बिलकुल गलत है। श्री चरणदासका भी यही मत है कि —

"पिंगल दाहिने अङ्ग है इडा सु बायें होय।
सुषमन इनके बीच है जब स्वर चाले दोय॥"

इस प्रकार से भी नाडियोंके सम्बन्धमें डा० रेलेका ही किसी अंशमें समर्थन करते हैं स्वरनिकास वैपरित्य का नहीं। परन्तु योगाफ पृष्ठ न० ३६० चित्र न० १ और २ के देखनेसे ज्ञात होता है कि इडा, पिंगला नाडिया सारे शरीरमें क्रमश

नाड़ियोंकी गति का मार्ग

बाय दायें चक्कर लगाती हुई स्वर निष्कासनके समय ठीक हो जाती हैं। डा० रेले हमारे इस मतसे तो सहमत हैं कि नाडिया अपने अपने स्थानमें स्वरको गले तक ठीक उठा कर बाह्य निष्कासनके समय विरुद्ध-धर्मा होजाती हैं अर्थात् बाया स्वर दाहिने और दाहिना स्वर बायें नथुनेसे निकलता है। हम तो दोनोंके विपरीत अपने अनुभवके आधार पर भिन्न राय

देते हैं, क्योंकि देखनेमें आया है कि जब कोई दाहिनी ओर की नाड़ीको सोकर या अन्य उपायसे दबाता है तो उस ओर की नाड़ी चलनी बन्द होजाती है। यदि दोनों नाड़िया दोनों ओर चक्कर लगाकर चलती तो शयन आदिसे एक ओर की नाड़ी बन्द नहीं होती और दोनों ही ओर उसका प्रभाव पड़ता। केवल सोनेसे नहीं परन्तु घुटनेको कांखमें देनेसे भी संबन्धित नाड़ी पर प्रभाव पड़ता है, यानि ऊपरकी नाड़ी दब जाती है और दूसरे ऊपरके भागपर जोर दिया जाव तो भी ऊपरकी नाड़ी बन्द होजाती है। हथेली जमीनपर टेककर उसपर जोर देनेसे उस ओर का स्वर बन्द होजाता है और उधरकी पसली पर कुहनी लगाना भी उधरकी नाड़ीको एक दम बन्द करदेता है। अत ये सब प्रामाणिक बातें इस मतका समर्थन करती हैं कि इड़ा बायीं ओर तथा पिंगला दाहिनी ओर रहती हैं। अन्यथा दाहिना भाग दबानेसे दाहिनी नाड़ी पर पूर्ण रूपेण प्रभाव न पड़ कर बायीं पर भी किसी अश तक पड़ता यदि दोनों नाड़िया एक दूसरी ओर चक्कर खाकर चलती होती, अत निश्चय हुआ कि चन्द्र नाड़ी बायीं ओर व सूर्य नाड़ी दाहिनी ओर रहती है। कर्मयोग ओ० हप्पणहारा के *Practical yoga* के सन्तराम बी ए कृत अनुवादमें भी चन्द्र नाड़ीका बायीं ओर करना बताया है व सूर्य नाड़ीका दाहिनी ओर लिखा है, परन्तु इड़ाको दाहिने नथुनेमें व पिंगलाका बायेंमें प्रवेश करना अनुचित है। सम्भव है कि योगाकका मत किसी सीमा तक ठीक हो पर यह ध्यान रहना चाहिये कि इड़ा बाये तथा

पिंगला दायें ओर ही रहती है, क्योंकि इसका प्रत्यक्ष अनुभव डा० रेले चरणदास व अन्यआचार्य और प्रतिदिनके मेरे अनुभवने सिद्ध कर दिया है। होसकता है कि इडाकी कोई अवान्तर शाखा दायीं ओर तथा पिंगलाकी शाखा बायीं ओर आजावे, क्योंकि मैं इसको प्रमाण रूपमें तो नहीं किन्तु विकल्प रूपमें किसी अंश तक कभी कभी भान होनेसे-मानलू तो बुरा नहीं। इसके अन्तिम निर्णयके लिये पाठकों व योगीजनोंका ध्यान आकर्षित किया गया है। जीवस्वरका भाग चेतन तो होता ही है, परन्तु उस ओरका नसकोरा अन्दरसे खुला हुआ व साफ ज्ञात होता है।

जीव स्वरकी ओरका नसकोरा अन्दरसे साफ ज्ञात होना।

चन्द्र और सूर्य नाडीमें पाच प्रकारके तत्त्व प्रयुक्त होते हैं और इन पाच तत्त्वोंमें इन्हीं तत्त्वोंका एक एक तत्त्व में अन्तर भी आता है। यद्यपि पूर्ण रूपसे इस बातका निश्चय नहीं हुआ कि अब अन्तर तत्त्वमें अमुक प्रत्यन्तर तत्त्व चलता है, पर मेरे ध्यानमें आता है कि अन्तर तत्त्वमें प्रत्यन्तर तत्त्व होता जरूर है। इस प्रकार तत्त्वोंका हिसाब बारी बारीसे चालू रहता है। तत्त्व पाच हैं— आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी।

पच तत्त्व और उनका क्रम

तत्त्वोंमे कौन पहले और कौन वादमे चलता है, इस पर भिन्न भिन्न मत हैं। 'शिव स्वरोदय' मे लिखा है कि प्रथम वायु, दूसरे अग्नि, तीसरे पृथ्वी और चौथे जल वहता है। इस प्रकार एक स्वरकी अढाई घडीमें पाचों तत्त्व उपरोक्त क्रमसे प्रकट होते हैं। 'शिव स्वरोदय' के छठे व सातवें श्लोकमें लिखा है कि निराकार एक महेश्वर देवसे आकाश उत्पन्न हुआ, आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल और जलसे पृथ्वी उत्पन्न हुई। इस प्रकारका वर्णन गीता रहस्यमें भी है कि परमात्मासे आकाश, आकाश से वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल और जलसे पृथ्वी उत्पन्न हुई। तैत्तिरियोपनिषद् इनका उत्पत्ति क्रम इस प्रकार वताता है —

तत्त्वोंकी गतिमें पूर्वापर विचार और तत्त्वोत्पत्ति

"आत्मन आकाश सभृत आकाशाद्वायु
वायोरग्निरग्नेरापा द्भ्य पृथ्वी, पृथ्वीव्या औषधम।"

परन्तु इसमें इसका कारण आगे पीछेका नहीं लिखागया। उत्तरवेदान्त ग्रन्थोंमें पञ्च महाभूतोंके उत्पत्तिक्रमके कारणों का विचार साख्य शास्त्रोकगुण परिणाम तत्त्व पर ही कियागया है। इन उत्तरवेदान्तियोंका कथन है कि "गुणा गुणेपु वर्तन्ते" इस न्यायसे पहले एक ही गुणका पदार्थ उत्पन्न हुआ और उससे दो गुणोंके पदार्थ आदि आदि। आकाशका मुख्य गुण

एकमात्र शब्द ही है, अतः पहले आकाश-
तत्त्वक्रम (शब्द) उत्पन्न हुआ, फिर वायु-(शब्द, स्पर्श) अग्नि-(शब्द, स्पर्श, रूप) जल-(शब्द, स्पर्श, रूप, रस) पृथ्वी-(शब्द, स्पर्श, रूप, रस गन्ध) गुणोंवाले तत्त्व उत्पन्न हुए।

बाबू ब्रजमोहनलाल वर्मा बी ए अपने ग्रन्थ 'ब्रह्मयोग-विद्या' में तत्त्वक्रम पर 'शिव स्वरोदय' के ७१ वें श्लोकके अनुसार ही लिखते हैं, परन्तु उनके आगे पीछे होनेका कारण किसीने नहीं बताया है। मेरी समझमें इनका क्रम आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी क्रमशः होना चाहिये। इस तत्त्व क्रमकी पुष्टि ब्रह्माण्डके उत्पन्न होनेमें 'शिव स्वरोदय' के सातवें श्लोकमें लिखी है। दूसरे वेदान्त, और सांख्य मत वालोंका भी यही क्रम है और यास्काचार्यका भी यही मत है। तीसरे आकाशमें शब्द गुण ही प्रधान है, अतः उसको पहले पैदा होना चाहिये। वायुमें शब्द स्पर्श दो गुण हैं, क्योंकि जब वायु जोरसे चलती है तब उसकी आवाज सुनाई देती है और हमारी स्पर्शेन्द्रियको भी उसका ज्ञान होता है। जब वायु हमारे शरीरका स्पर्श करती है तो दो गुणवाला वायुतत्त्व दूसरे उत्पन्न हुआ। तीसरा तीन गुणवाला अग्नितत्त्व पैदा हुआ। इसके तीन गुण-शब्द, स्पर्श व रूप हैं—अर्थात् यह आवाज करती है, छूनेसे प्रभाव पड़ता है और उसके रूप भी है। चौथा चार गुणवाला-शब्द, स्पर्श, रूप, रस युक्त जलतत्त्व

पाच गुणवाला पृथ्वी तत्त्व उत्पन्न हुआ। इसमें जलके उपरोक्त गुणोंके सिवा गन्धगुण और अधिक है। इस प्रकार इन सव तत्त्वोंका यह क्रम युक्तियुक्त है। चतुर्थ कारण यह है कि 'शिव स्वरोदय' के श्लोक ७१ वें में जो तत्त्व क्रम लिखा है, और जिसका समर्थन वाबू व्रजमोहनलाल वर्मा बी ए ने भी किया है वह अपूर्ण है, क्योंकि इन तत्त्वोंके वर्णनमे आकाश तत्त्व का उल्लेख ही नहीं है कि यह कव चला करता है। सम्भव है 'शिव स्वरोदय' के ७१वें श्लोकमे कमी रहगई हो अन्यथा आकाश तत्त्वका उल्लेख अवश्य करना चाहिये था। मैंने जो तत्त्वोंका क्रम बताया है, वह ठीक है, क्योंकि जव नाडी वदलती है तो प्रारभमे आकाश तत्त्व उसीमे से वहता हुआ ज्ञात होता है। तदन्तर वायु, अग्नि आदि तत्त्व चलते हैं, और सवसे वादमें पृथ्वी तत्त्व वहता है। जव तक इसके विपरीत अन्य कोई प्रामाणिक तथ्य न मिले तव तक यही मान्य है।

आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी अढाई घड़ी (१ घण्टा) में क्रमश ४, ८, १२, १६, २० मिनट तक चलते हैं। जव नाडिया अढाई घड़ी के नियमसे चलें तव तो यह नियम ठीक है, परन्तु यह क्रम उस समय लागू नहीं होना चाहिये और न होता है जव कि एक नाड़ी अढ़ाई घड़ीसे ज्यादा समय लेलेवे, क्योंकि

तत्त्वोंका समय

उस समय तत्त्व भी ज्यादा या कम चलते हैं, ऐसा मेरे अनुभव में आया है। यथा–जब नाडी बदलती है और उस नाडीको कुछ निश्चित समय तक चलना होता है तो उसी निश्चित समय के अनुसार तत्त्व चलने प्रारम्भ होते हैं परन्तु यदि बीचमें नाड़ी बदल गई तो वह तत्त्व चालू नहीं रहेगा जो बदलती हुई नाडीमें चलरहा था और बदलता हुआ तत्त्व अपनी दूसरी बदलती हुई नाडीमें प्राय उतना ही समय लेगा जितना बाकी रहा है। जैसे मानलो इडा चार घण्टे चलेगी तो बारी२ से तत्त्व आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी क्रमश १६, ३२, ४८ ६४ और ८० मिनट प्राय चलेंगे। अब यदि इसी प्रकार तत्त्वक्रम वह रहा है, परन्तु तीन घण्टे के बाद इडा नाड़ी बदलदीगई तो तत्त्वक्रम बिगड़जायेगा, क्योंकि प्रथम तो इडा पिंगलाके बीचमें सुषुम्नाका कुछ अन्तर अवश्य होगा और ऐसा होनेसे यह सिद्ध हुआ कि तत्त्व क्रम हिसाबसे ठीक नहीं चला। मेरी रायमें यही होसकता है कि २४ घटों में तत्त्वोंका जोडमिलानेसे हिसाव के अनुसार प्राय सबकी बारी आजावेगी। अत प्रत्येक अभ्यास करनेवालेको पूरा ध्यान रखना चाहिये।

तत्त्वोंके नक्षत्र

'शिव स्वरोदय' में पृथ्वीके–धनिष्ठा, रोहिणी, ज्येष्ठा, अनुराधा, श्रवण, अभिजित् और उत्तराषाढा नक्षत्र हैं। जलके-पूर्वाषाढ़ा, आश्लेषा, मूल,

आर्द्रा, रेवती, उत्तरा भाद्रपदा, शतभिषा। अग्निके—भरणी, कृत्तिका, पुष्य, मघा, पूर्वाफाल्गुनि, पूर्वाभाद्रपदा, स्वाति। वायुके- विशाखा, उत्तराफाल्गुनि, हस्त, चित्रा, पुनर्वसु, अश्विनी, मृगशिरा है। और आकाशमे कोई नक्षत्र नहीं लगाया गया है, क्योंकि अठाइसके अठाइस नक्षत्र उपरोक्त चारों तत्त्वोंमें लगादिये गये हैं। 'सद्-ज्ञान चिन्तामणि' में भी जोधपुर वासी श्री रामलाल ने यही लिखा है। ज्ञात होता है कि उसने भी शिव स्वरोदय' से लिया है। श्रीब्रजमोहनलाल वर्मा बी ए ने 'ब्रह्मयोग विद्या' में इडा नाडीमें मघा, पूर्वाफाल्गुनि, उत्तराफाल्गुनि, आश्लेषा, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल और पूर्वाषाढा लिखे हैं, और पिंगलामे—अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, उत्तराषाढ़ा, अभिजित्, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा, रेवती, रोहिणी और सुषुम्नामें—मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य लिखे हैं। इस प्रकार नक्षत्रोंका वर्णन ग्रन्थावलोकन करते समय आता है, जिसका विशद् रूपसे आगे वर्णन होगा।

स्वरोंकी राशि

सूर्य स्वरकी राशि- मेष, कर्क, तुला, और मकर है यानि सूर्य स्वरकी राशिया चर कारक हैं। चन्द्र स्वरकी राशि— वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ है- यानि चन्द्र स्वरकी राशियां स्थिर कारक है। सुषुम्नाकी राशि—मिथुन, कन्या, धन और मीन यानि द्विस्वभाव है।

इन बारह राशियोंके बारह महीने संक्रान्ति सम्बन्धित राशिके दिनसे गिनकर इन स्वरोंकी राशि जाननी चाहिये। जैसे मेष संक्रान्तिका महीना सूर्य स्वरका महीना कहलायेगा। 'शिव स्वरोदय' में दिन रातमें बारह राशिया बताई हैं, जिनमें ६ चन्द्रमाकी और ६ क्रमश सूर्यके उदयमें हैं।

स्वरोंके देवता

इड़ा नाड़ीका देवता ब्रह्मा है। पिंगलाका शिव और सुषुम्नाका विष्णु है, ऐसा श्री ब्रजमोहनलाल वर्मा बी ए ने लिखा है।



षष्ठम् प्रकाश

स्वरोंके साथ पृथक् तत्त्वोंकी मैत्री और उसका फल

(१) 'स्वरोंका विज्ञान आठ प्रकार है' ...
स्वरोदय" में वर्णित है। जिसमें प्रथम तत्त्वोंकी ...
श्वासकी संधि, तीसरे स्वरोंके चि...
स्वरोंका स्थान, पाचवें वर्ण, छठे
सातवें स्वाद और आठवां गति है

स्वरोंका आठ प्रकारका विज्ञान

(२) प्रातःकालसे लेकर समय समय पर ध्यान लगाना और ध्यान लगानेके लिये दोनों हाथोंके दोनों अगूठों से दोनों कानोंके छिद्र, दोनों अनामिकाओं से दोनों आँखें, दोनों मध्यमाँगुलियोंसे दोनों नसकोरे तथा दोनो तर्जनियों एव कनिष्ठिकाओंसे मुख बन्द करके समाधिस्थ होकर तत्त्वोंका रगों से पता चलावे और समाधि त्यागकर दर्पणमें मुंह देखे। इनको पहचाननेके लिये श्वासको छोड़े। यह विधि साधारण रूपसे हरतत्त्वमें काम लेनी चाहिये।

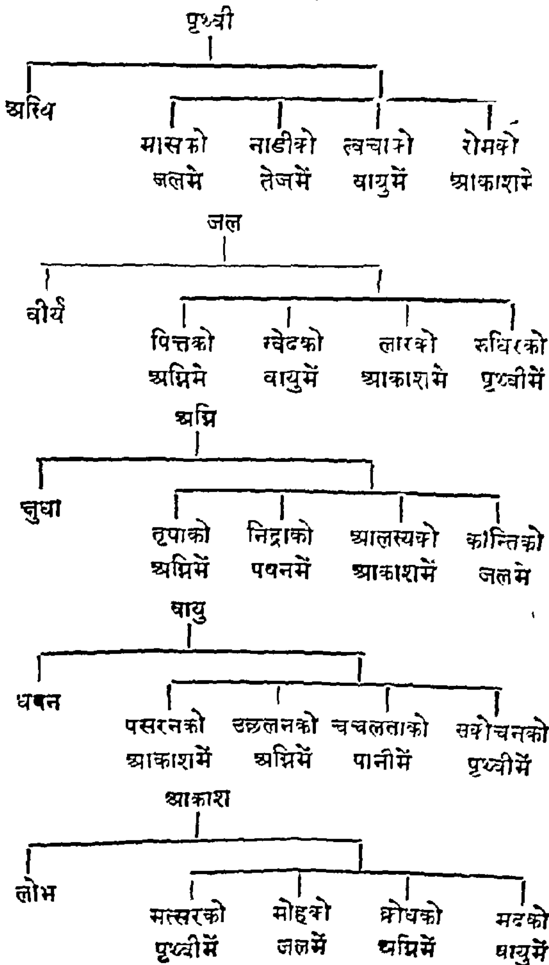
प्रातः ध्यान

(३) "साधनाक" के पृष्ठ ३०६ में जिन जिन तत्त्वोंका जो जो मण्डल बतायागया है उन उन तत्त्वोंके गुण और स्थानादिका ध्यान प्राणों को स्थिरकरके पाच घटिका तक धारणा करना चाहिये। ऐसी धारणा करते करते तत्त्वोंके अनुसार उनके गुण आदि साधकको अनुभव होने लगते हैं, जैसाकि भिन्न तत्त्वोंमें आगे वर्णन कियागया है।

पचघटी तक प्राण स्थिर करके ध्यान

(४) "मानस कल्लोलिनी योगाक" पृष्ठ ८१० से विदित होता है कि श्री रसिक शिरोमणिने एक एक तत्त्वके दो दो भाग किये और फिर पहले आधे भागको मुख्य रखकर दूसरे आधे भागके फिर चार चार भाग किये जिनका वर्णन नीचे तत्त्व क्रममें दियागया है।

तत्त्व विभाग


तत्त्वक्रम
पृथ्वी
अस्थि
मासको
जलमें
नाडीको
तेजमें
त्वचाको
वायुमें
रोमको
आकाशमें
जल
वीर्य
पित्तको
अग्निमें
स्वेदको
वायुमें
लारको
आकाशमें
रुधिरको
पृथ्वीमें
अग्नि
क्षुधा
तृषाको
अग्निमें
निद्राको
पवनमें
आलस्यको
आकाशमें
कान्तिको
जलमें
वायु
धवन
पसरनको
आकाशमें
उछलनको
अग्निमें
चचलताको
पानीमें
सकोचनको
पृथ्वीमें
आकाश
लोभ
मत्सरको
पृथ्वीमें
मोहको
जलमें
क्रोधको
अग्निमें
मदको
वायुमें

(५) उपरोक्त नियम चारके अनुसार भिन्न भिन्न तत्त्वके नीचे भिन्न भिन्न तत्त्वोंकी वस्तुओंका वर्णन करदियागया है। (देखिये कल्याण योगाक पृष्ठ ८१०, ८११) वहा पर लिखा है कि अपञ्चीकरण पृथ्वीके अर्धभागमें अस्थि मुख्य रहा (और आधेसे जो चार भाग हुए) मासको जलमें, नाड़ीको तेजमें, त्वचाको वायुमें और रोमको आकाशमें मिलाया। पुन जल का अर्धभाग वीर्य मुख्य रक्खा। (और आधेसे जो चार हुए) पित्तको अग्निमें, स्वेद (पसीना) को वायुमें, लारको आकाश में, और रुधिरको पृथ्वीमें मिलाया। पुन अग्निका मुख्य भाग क्षुधा रखकर (दूसरे आधेसे जो चार हुए) तृषाको अग्निमें, निद्राको पवनमें, आलस्यको आकाशमें और कान्तिको जलमें साना या मिलाया। पुन वायुका मुख्य भाग धावन रखकर (दूसरे आधेसे जो चार हुए) और पसरनको आकाशमें मिलाया, उछरन अग्निमें, चञ्चलता को जलमें और सकोचन को पृथ्वीमें मिलाया। पुन आकाशका मुख्य भाग लोभ रख कर (दूसरे भागसे जो चार रहे) मत्सरको पृथ्वीमें, मोहको जलमें, क्रोधको अग्निमें और मदको वायुमें मिलाया।

(६) साधक प्रात काल आसन लगाकर बैठे और नाकद्वारा-जोरजोरसे श्वास फैंके जितनी दूर श्वास जावे उतनी दूर पर ध्यान देनेसे एक प्रकार का धुँआ प्रतीत होगा, उससे पाच रङ्ग ज्ञात होंगे —

श्वास फैंक कर तत्त्व जानना

आकाशतत्त्व—	काला रङ्ग, नाकके बिलकुल पास।
अग्नितत्त्व—	लाल रङ्ग, चार अङ्गुल पर।
वायुतत्त्व—	हरा रङ्ग, आठ अङ्गुल पर।
पृथ्वीतत्त्व—	पीला रङ्ग, बारह अङ्गुल पर।
जलतत्त्व—	सफेद रङ्ग, सोलह अङ्गुल पर।

काचके टुकड़े पर श्वाससे तत्त्व ज्ञान

(७) काचके टुकडे पर नाकसे श्वास छोडने पर वू दे· सी नजर आवेंगी उनमें रङ्ग देखने और कुछ समय तक अभ्यास करनेसे अवश्य सिद्धि होगी पर यह एकान्त में करना उपयुक्त होगा।

स्वभावसे तत्त्व जानना

(८) अग्नि तत्त्वमें क्रोध, वायुमें इच्छा, जल तथा पृथ्वीमें क्षमाके होनेका प्रमाण श्रीयुक्त राम-लालने अपनी पुस्तक 'सद्ज्ञान चिन्ता मणि' म लिखा है।

पचरग गोलीसे तत्त्वज्ञान

(६) पाच रङ्गकी पाच गोली बनाले, फिर आँखें बन्द कर एकाग्रतासे पाच मिनट तक ॐ मन्त्रका जाप करने के बाद एक गोली निकालले। बहुधा तत्त्वका रङ्ग निकल आता है। इसी प्रकार मित्रसे कहो कि वह किसी रङ्गका मनमें ध्यान करे तो जिस रगका वह ध्यान करेगा उस समय उसी रगका तत्त्व चलरहा है ऐसा जानना चाहिए।

(१०) शक्ति अङ्कके पृष्ट ५८१ पर शब्द उचारण

के प्रभावका बहुत सुन्दर विवेचन किया है जिसका कुछ साराश नीचे दिया जाता है—

"जिन अक्षरोंसे शब्द बनता है उनके उच्चारण स्थान पाच हैं। होठ, जीभ, दान्त, तालु और कण्ठ। प्रत्येक स्थान एक एक तत्त्वका स्थल है। होठ पृथ्वी तत्त्वका, जीभ जलका, दान्त अग्निका, तालु वायुका और कठ आकाश तत्त्वका स्थान है। मन्त्रोंके ऐसे अक्षर या शब्द जिनका उच्चारण होठसे होता है— पृथ्वी तत्त्वका विकास करके जपकर्तामें पृथ्वी तत्त्वको प्रवल बनाते हैं। इसी प्रकार जीभ से उच्चारण होनेवाले अक्षर या शब्द जल तत्त्वको, तालुसे उच्चारण होनेवाले वायु तत्त्वको, दान्तसे उच्चारण होनेवाले अक्षर अग्नि तत्त्वको और कण्ठसे उच्चारण होनेवाले आकाश तत्त्वको प्रवल बनाते हैं।

शब्दोच्चारणसे तत्त्वका प्रवल बनना

उपरोक्त दसों नियम ज्ञानहेतु सबमें लगेंगे जहातक संबध होगा।

पृथ्वी तत्त्वका निवास मूलाधार चक्रमें है। इसको अंग्रेजीमें *Pelvic plexus* कहते हैं। इस मतके समर्थक प० तडित्कान्त झा हैं। आपके मतानुसार शरीरमें योनि के पास सीवनीमें सुषुम्ना सलग्न है। यहीं से सुषुम्ना आरम्भ होती है। प्रत्येक चक्रका आकार कमल फूलसा है। यह चक्र भूलोकका प्रतिनिधि है। पृथ्वी तत्त्वका ध्यान इसी चक्रसे किया जाता है। इसका

पृथ्वी तत्त्व

रङ्ग पीला, विशेष गुण गन्ध, स्वाद मधुर और बीज ल है। इसके श्वासकी गति नसकोरेके मध्य भागमे से होती है और इसके श्वासका प्रवाह बारह अङ्गुल है। यह साधारण रूप से पचास पल यानि वीस मिनट तक रहता है। आकृति चतुष्कोण है। रङ्गका पता उपरोक्त रूपसे समाधिस्थ होकर लगाना चाहिये। इसका ज्ञान साधारण बात नहीं है, क्योंकि इससे तत्त्वकी पहिचान होजाती है और तत्त्वके विज्ञानमें पूर्ण सफलता मिलती है। परन्तु कष्ट साध्य अवश्य है। अत प्रात काल काफी समय तक एकाग्रचित्तसे अभ्यास करने पर सफलता मिलती है। क्योंकि विचार ही प्रत्येक वस्तुकी प्राप्तिका प्रधान कारण है। (मन एव कारण मनुष्याणा बन्ध मोक्षयो) मेराभी यही अनुभव है और मैंन भी कठिनाइयोंको विचारसे ही पार किया है इस विचार प्रधानता तथा अनुभवसे हरेक वस्तु किसी सीमा तक इच्छानुसार प्राप्त कर रहा हूँ।

इस तत्त्वकी आकृति चतुष्कोण है। ऊपर लिखे अनुसार समाधिके बाद काचमे अपना मुख देखकर उसी पर श्वास छोड़ना चाहिये। यदि आकृति चतुष्कोण होतो समझना चाहिये कि पृथ्वी तत्त्व चलरहा है।

स्वाद इस तत्त्वका मधुर है। क्योंकि जब पृथ्वी चल रहा हो तो मधुर स्वादका भावन होता है। बहुतसे आदमी स्वादसे ही तत्त्व पहिचान लेते हैं। अतः इसका भी अभ्यास

करना चाहिये। इसका सक्रिय अभ्यास आवश्यक है। क्योंकि ये बातें केवल मात्र सिद्धान्तसे नहीं जानी जासकती। इसकी चाल नसकोरेके मध्यभागसे होती है और बारहअङ्गुल तक जाती है। ध्यान देनेसे मालूम पड़ता है कि श्वास नसकोर के मध्यभागसे अर्थात् उसके बीचमें से सीधा साफ खुला हुआ बहता है और दूसरा नसकोरा बिलकुल बन्द रहता है। पण्डित तड़ित्कान्तझाने इसकी रीति यह बताई है कि बारीक धुनी हुई रुई या गत्ते पर बारीक धूल रख, जिस नसकोरेसे श्वास चलरहाहो उसके पास लेजानेसे धूल हिलने या उड़ने लगे तो ठहर कर दूरीको नापो। वह जितने अङ्गुल होगी उसीके अनुसार तत्त्वकी उपस्थिति जाननी चाहिये। यद्यपि मैंने इसका परीक्षण किया पर सन्तोष न हुआ अत यह तत्त्व पहचाननेकी उत्तम रीति नहीं कही जा सकती।

इस तत्त्वका गुण विशेषतया गन्ध है। वैसे शब्द, स्पर्श, रूप, रसभी पाये जाते हैं, परन्तु गन्ध गुण इसको अन्य तत्त्वोंसे अलग करता है। इसकी ज्ञानेन्द्रिय नासिका और कर्मेन्द्रिय गुदा है। शरीरमें पाण्डु (पीलिया) रोग इसी तत्त्वके विकारसे पैदा होता है। मानसिक विचारोंमें भी इसी तत्त्वकी प्रधानता रहती है यथा भय आदि जो इससे सम्बन्धित हैं, परन्तु वे मूलाधार चक्रमें ध्यान स्थिर करनेसे स्वयमेव शान्त होजाते हैं।

"कल्याण साधनाङ्क" पृष्ठ ३१० में बताया गया है कि प्राणों

को स्थिर करके पृथ्वी तत्त्वके गुणोंका ध्यान करे। ऐसा करने से यह अनुभव होने लगता है कि-मैं इस एक शरीरमें आबद्ध नहीं हूँ। मैं सम्पूर्ण पृथ्वी हूँ। ये बडे बडे नदी-नद मेरे शरीरकी नस एव नाडिया हैं और सम्पूर्ण जीवोंके शरीर के रोग अथवा आरोग्यके कीटाणु हैं। समस्त पार्थिव शरीर मेरे अपने ही अङ्ग हैं। घेरण्ड सहितामें कहागया है कि जो उक्त प्रकारसे पृथ्वीकी धारणा करके उसको हृदयमें प्राणों के साथ चिन्तन करते हैं वे सम्पूर्ण पृथ्वी पर विजय करने में समर्थ होते हैं। शारीरिक मृत्यु पर उसका आधिपत्य हो जाता है। योगी याज्ञवल्क्यका कथन है कि— पृथ्वीधारणा सिद्ध होने पर शरीरमें किसी प्रकारके भी रोग नहीं होते। मनुष्य शरीरमे पैरसे लेकर जानुपर्यन्त पृथ्वीमण्डल है। 'शिव स्वरोदय' भी इसी बातका समर्थन करता है, क्योंकि शिव 'स्वरोदय' में जानु देशमें पृथ्वीका होना बतलाया है। (देखो शिवस्वरोदयका श्लोक १५७)। पृथ्वी और जलकी धारणामे श्लेष्मज दोष नष्ट होजाते है।

ध्यान विधि—यह बताई गई है कि एक पहर रात रह जाने पर शान्तस्थलमे पवित्र आसन पर दोनों पैरोंको पीछेकी ओर मोड़कर उनपर बैठजावे और दोनों हाथ उलटे करके घुटनोंपर ऐसे रक्खे कि जिससे अङ्गुलियोंकी नोक पेटकी ओर रहें। तब नासाग्र दृष्टि रखते हुए मूलाधार चक्रमें अर्थात् लं बीजवाली चौकोण पीली पृथ्वीका ध्यान करे। ऐसा करने

से नासिका सुगन्धसे भर जावेगी और शरीर स्वर्ण-समान कान्तिवाला होजायगा । ध्यान करते समय पृथ्वीके समान उपरोक्त गुणोंको प्रत्यक्ष करनेका प्रयत्न करना चाहिये और लं बीजका जापकरना चाहिये । यह तत्त्व स्थिर कार्यको सिद्ध करनेवाला है:—

"लं बीजा धरणीं ध्यायेच्चतुरस्रा सुपीतभाम् ।
सुगन्धस्वर्णवर्णत्वमारोग्य देह लाघवम् ॥"

उपरोक्त नोट ४ के अनुसार पृथ्वीतत्त्वके दो भाग हुए । प्रथम भागसे अस्थि (हाड) दूसरे भागसे मास, रोम, नाड़ी और त्वचा हुए । यथा 'शिवस्वरोदय'—

"शुक्रशोणित मज्जाश्च मूत्रं लालाच पञ्चमम् ।
आप पञ्चगुणा प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषितम् ॥"

जलतत्त्व

जल तत्त्वका निवासस्थान स्वाधिष्ठान चक्र (*Hypogastric Plexus*) में है । यह चक्र पेडू अर्थात लिंग (जननेंद्रिय) के मूल में स्थित है । यह चक्र "भुव" लोक का प्रतिनिधि है । पैरोंके अन्तमें जल स्थित है । इसका ध्यान इसी तत्त्वमें किया जाता है । इसका रङ्ग श्वेत है । विशेष गुण रस, स्वाद कसैला और बीज वं है । इसके श्वासकी गति नसकोरेके निचले भागमें से होती है और इसके श्वासका परिणाम १६ अङ्गुल और साधारण

को स्थिर करके पृथ्वी तत्त्वके गुणोंका ध्यान करे। ऐसा करने से यह अनुभव होने लगता है कि-मैं इस एक शरीरमें आबद्ध नहीं हूँ। मैं सम्पूर्ण पृथ्वी हूँ। ये बडे बडे नदी-नद मेरे शरीरकी नस एव नाड़िया हैं और सम्पूर्ण जीवोंके शरीर के रोग अथवा आरोग्यके कीटाणु हैं। समस्त पार्थिव शरीर मेरे अपने ही अङ्ग हैं। घेरण्ड सहितामें कहागया है कि जो उक्त प्रकारसे पृथ्वीकी धारणा करके उसको हृदयमें प्राणों के साथ चिन्तन करते हैं वे सम्पूर्ण पृथ्वी पर विजय करने में समर्थ होते हैं। शारीरिक मृत्यु पर उसका आधिपत्य हो जाता है। योगी याज्ञवल्क्यका कथन है कि— पृथ्वीधारणा सिद्ध होने पर शरीरमें किसी प्रकारके भी रोग नहीं होते। मनुष्य शरीरमें पैरसे लेकर जानुपर्यन्त पृथ्वीमण्डल है। 'शिव स्वरोदय' भी इसी बातका समर्थन करता है, क्योंकि शिव 'स्वरोदय' में जानु देशमे पृथ्वीका होना बतलाया है। (देखो शिवस्वरोदयका श्लोक १५७)। पृथ्वी और जलकी धारणामे श्लेष्मज दोष नष्ट होजाते है।

ध्यान विधि—यह बताई गई है कि एक पहर रात रह जाने पर शान्तस्थलमे पवित्र आसन पर दोनों पैरोंको पीछेकी ओर मोड़कर उनपर बैठजावे और दोनों हाथ उलटे करके घुटनोंपर ऐसे रक्खे कि जिससे अङ्गुलियोंकी नोक पेटकी ओर रहें। तब नासाग्र दृष्टि रखते हुए मूलाधार चक्रमे अर्थात् ल बीजवाली चौकोण पीली पृथ्वीका ध्यान करे। ऐसा करने

से नासिका सुगन्धसे भर जावेगी और शरीर स्वर्ण-समान कान्तिवाला होजायगा। ध्यान करते समय पृथ्वीके समान उपरोक्त गुणोंको प्रत्यक्ष करनेका प्रयत्न करना चाहिये और ल बीजका जापकरना चाहिये। यह तत्त्व स्थिर कार्यको सिद्ध करनेवाला है—

"ल बीजा धरणीं ध्यायेच्चतुरस्रा सुपीतभाम्।
सुगन्धस्वर्णवर्णत्वमारोग्य देह लाघवम्॥"

उपरोक्त नोट ४ के अनुसार पृथ्वीतत्त्वके दो भाग हुए। प्रथम भागसे अस्थि (हाड) दूसरे भागसे मास, रोम, नाड़ी और त्वचा हुए। यथा 'शिवस्वरोदय'—

'शुक्रशोणित मज्जाश्च मूत्र लालाच पञ्चमम्।
आप पञ्चगुणा प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषितम्॥"

जलतत्त्व

जल तत्त्वका निवासस्थान स्वाधिष्ठान चक्र (*Hypogastric Plexus*) में है। यह चक्र पेडू अर्थात लिग (जननेन्द्रिय) के मूल में स्थित है। यह चक्र भुव" लोक का प्रतिनिधि है। पैरोंके अन्तमें जल स्थित है। इसका ध्यान इसी तत्त्वमें किया जाता है। इसका रङ्ग श्वेत है। विशेष गुण रस, स्वाद कसैला और बीज व है। इसके श्वासकी गति नसकोरेके निचले भागमे से होती है और इसके श्वासका परिणाम १६ अङ्गुल और साधारण

रूपसे ४० पल (१६ मिनट) तक रहता है। आकृति अर्ध-चन्द्राकार है। इस तत्त्वकी जिह्वा ज्ञानेन्द्रिय और उपस्थ (लिंग) कर्मेन्द्रिय है। रङ्ग पृथ्वी तत्त्वके समान ध्यान करके जानना चाहिये। आकृति भी पृथ्वी तत्त्वके अनुसार ही अभ्यास करके समझनी चाहिये। कटु, तिक्त, अम्ल, कषाय आदि समस्त रसास्वाद इसी तत्त्वके कारण होते हैं। मोह आदि विकार इसी तत्त्वके परिणाम हैं। ध्यानविधि—

व 'बीज वारुण ध्यायेदर्धचन्द्र शशिप्रभम्
क्षुत्पिपासासहिष्णुत्व जलमध्येषु मज्जनम्

अर्थात्—'व' बीजवाले अर्धचन्द्राकार चन्द्रमाके समान कान्तिवाले जल तत्त्वका रक्त चक्रमें ध्यान करे। इससे भूख प्यास मिटकर सहनशक्ति उत्पन्न होती है और जलमें अव्याहत गति होजाती है। 'कल्याण साधनाक' पृष्ठ ३०६में लिखा है कि इसके चिन्तनसे ऐसा अनुभव होने लगता है कि—मैं जल तत्त्व हूँ। पृथ्वीका कपाट मेरे अस्तित्वसे ही सम्बद्ध है। स्वर्गीय अमृत और विष दोनों ही मेरे स्वरूप हैं। जल धारणा सिद्ध होजाने पर समस्त ताप मिटजाते हैं और अन्तःकरणके विकार धुलजाते हैं। मेरे अनुभवमें आया है कि जलतत्त्वमें चित्त बड़ा प्रसन्न रहता है और इसके जाननेके विशेष चिन्ह ये भी हैं कि इसके विद्यमान रहने पर बड़ी अच्छी प्यास लगती है और पानी स्वादिष्ट लगता है। चर कार्यमें यह विशेष रूपसे सिद्धिप्रद है। इसके रहते जलमें [illegible] डूबे रहनेकी शक्ति आजाती है।

जलतत्त्वके स्थानके विषय में 'शिवस्वरोदय' श्लोक १५७ में लिखा है कि पैरोंके अन्तमें जल स्थित है। यह बात साफ नहीं है कि पैर कितने हिस्सेको मानागया है। इसमे टागें सम्मिलित हैं या नहीं। यदि टागें पैरोंमें गिनीजावें तो अर्थ ठीक बैठ सकता है। क्योंकि साधनाक पृष्ठ ३०१ में जलका स्थान जानुसे लेकर पायु इन्द्रिय तक कहा है और इसका स्वाधिष्ठान चक्र भी यही पड़ता है, अत पैरोंका अर्थ टागें समझना ही उपयुक्त होगा। किसी किसी आचार्यके मतसे नाभि तक उसको माना है, परन्तु एक तो योगी याज्ञवल्क्य इसे स्वीकार नही करते दूसरे चक्रों तथा अन्य आचार्योंका मत देखते हुए यह अग्नितत्त्वका स्थान गिना गया है। इससे यह प्रमाणित हुआ कि जलतत्त्व पायु इन्द्रिय पर्यन्त है।

उपरोक्त नियम ४ के अनुसार जलतत्त्वके प्रथम भागसे वीर्य, दूसरे भागसे पित्त, पसीना, रुधिर और लार ये चार चीजें पैदा हुई। सध्या विज्ञानमें स्वामी अचलारामजी पृ० न० ११६ पित्तकी जगह मूत्र लिखते हैं। 'शिवस्वरोदय' का मत यह है —

शुक्र शोणित मज्जाश्च मूत्र लालाच पञ्चमम् ।
आप पञ्चगुणा प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषितम् ॥

अर्थात्-वीर्य, शोणित (रक्त), स्त्रीका रज, मज्जा, मूत्र और पाचवीं लार ये पाचगुण जलके हैं।

शरीरमें अग्नितत्त्वका निवास स्थान मणिपुर चक्र (*Epigastric Plexus*) है। यह चक्र नाभिमें है और स्व लोकका प्रतिनिधि है। रङ्ग लाल, गुण रूप, आकृति त्रिकोण, ज्ञानेन्द्रिय आँख और कर्मेन्द्रिय पैर हैं। क्रोध, सूजन, अपच आदि विकार इसकी सिद्धिसे दूर होते हैं और इससे कुण्डलिनीका जागरण सरल होजाता है। र बीजवाले त्रिकोण और अग्निके समान लाल प्रभावाले उक्त चक्रमें अग्निका ध्यान करे। इसकी सिद्धि होने पर ज्यादा जल तथा अन्न ग्रहण करनेकी शक्ति तथा धूप, अग्नि सहनेकी शक्ति आजाती है। दोनों कन्धों पर अग्नि स्थित है। यथा —

अग्नितत्त्व

र बीज शिखिन ध्यायेत् त्रिकोणमरुणप्रभम् ।
बह्वन्नपानभोक्तृत्वमातपाग्निसहिष्णुता ॥

इसका स्वाद तीखा है। पर 'शिवस्वरोदय' कडुआ मानता है। उसमे इसका स्थान स्कन्धोंपर लिखा है जो ठीक नहीं, क्योंकि अन्य ग्रन्थोंमें और इसके चक्रके स्थान एव 'कल्याण साधनाङ्क' पृष्ठ ३०६ के देखनेसे ज्ञात होता है कि अग्निमण्डल पायु इन्द्रिय से हृदय तक है। इसकी धारणा सिद्ध होनेके बाद ऐसा भाससा होता है कि- मैं अग्नि स्वरूप हूँ। सूर्य चन्द्र एव विद्युत रूपमें मैं ही प्रकाशित होता हूँ। सबके उदरमें रहकर मैं ही धारण एव पोषण करता हूँ। सबके नेत्रोंके रूपमें प्रकट होकर मैं ही सब कुछ देखता हूँ। समस्त देवताओंका शरीर मेरे द्वारा बना है। साधकको जलती हुई अग्निमें डालदिया

जावे तो वह जलता नहीं। स्वामी रामतीर्थ आदि उच्चकोटिक महात्मा भी शायद इस कोटि तक पहुँचकर यह कहने लगगये थे कि-'मैं अग्नि स्वरूप हूँ। समस्त भुवनके रक्षक सूर्य चन्द्र आदि नक्षत्र मेरी शक्तिसे कार्य तत्पर हैं। ऐसा कहना घमण्ड नहीं, किन्तु इस स्थितिमें ज्ञानीको ऐसा भासित होने लगता है, और वह ऐसा कहनेके लिये बाधित होजाता है।

श्वासकी गति

अग्नितत्त्व नसकोरेके ऊपरके भागमें से भँवरी खाकर चलता है और साधारण अनुभवसे यह अच्छी तरह ज्ञात होसकता है। क्योंकि ऊपरके भागमें नसकोरे से अड़ता हुआ चलता है और इस का प्रमाण चार अङ्गुल है। साधारण रूपसे ३० पल यानि १२ मिनट तक रहता है। 'शिवस्वरोदय' के १७२वें श्लोकमें लिखा है कि— ऊपरके हिस्सेको प्रकाशमान करता है, और १७५वें श्लोकके अनुसार इसका फल मध्यम लिखा है। इसकी दिशा दक्षिण लिखी है

कार्य—इस तत्त्वमें क्रूर कर्म करने चाहियें।

रोग नाश—अग्निधारणासे वातज रोग नष्ट होजाते हैं।

उपरोक्त नियम ४ के अनुसार अग्नि तत्त्वके आधे भागसे क्षुधा (भूख) हुई। आधेसे प्यास, आलस्य निद्रा और कान्ति ये चार वस्तुयें हुईं। परन्तु चरणदासजी कान्तिकी अपेक्षा जम्भाई लिखते हैं और पूर्वानुसारी हैं। इसी प्रकार

'शिवस्वरोदय' भी पाँच गुण क्षुधा, तृषा, निद्रा, कान्ति और आलस्य मानता है।

वायुतत्त्व अन्याहत चक्र (*Cardiac Plexus*) मे स्थित है। इसका स्थान हृत् प्रदेश है और यह मह लोकका प्रतिनिधि है। इसका रङ्ग हरा, आकृति षट्कोण, (गोल भी मानीगई है) विशेषगुण स्पर्श, ज्ञानेन्द्रिय त्वचा और कर्मेन्द्रिय हाथ है। ध्यानविधि पूर्वोक्त अनुसार ही मानी गई है। इसका स्वरूप —

यं बीज पवन ध्यायेत वर्तुल श्यामलप्रभम ।
आकाशगमनाद्य च पक्षिवद्गमन तथा ॥

अर्थात् य बीजवाले गोलाकार तथा हरी प्रभावाले वायु तत्त्वका उपरोक्त चक्रमें ध्यानकरे। इससे आकाश गमन अर्थात् पक्षियोंकी तरह उड़ना आदि सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। 'शिवस्वरोदय' के श्लोक १५२ मे इस तत्त्वका रङ्ग काला बिन्दु रूप लिखा है और आकृति गोल तथा इसे नील मेघ के समान वर्णवाला बताया है।

श्वासकी गति–चाल इसकी टेढी (तिरछी) अर्थात एक तरफ है।
श्वासका प्रमाण-इसका प्रमाण आठ अङ्गुल है। आठ मिनट तक यानि बीस पल तक रहता है।

स्वाद—इसका खट्टा है।
कार्य—मारण, उच्चाटन आदि चरकार्य इसमें करने चाहियें।

'शिवस्वरोदय' के मतमें इसका स्थान नाभिके मूलमें स्थित है, परन्तु यह ठीक नहीं । 'कल्याण साधनाङ्क' आदि अन्य ग्रन्थावलोकनसे ज्ञात होता है कि चक्रका स्थान हृदय से लेकर भौंरेके बीच तक वायुमण्डल है । प्राणोंको स्थिर करके हृदयमें इसका चिन्तन करनेसे ऐसा अनुभव होता है कि- मैं वायु हूँ। प्रत्येक वस्तुमें मैं आकर्षण निष्कर्षण शक्ति हूँ। मैं ही गतिस्वरूप सब गतियोंकी कला, सबका श्वासोच्छ्वास बनकर जीवदान कर रहा हूँ । इसका साधक जहाँ हवा न हो वहाँ भी रह सकता है। वह न जलसे गलता है, न आगसे जलता है, न वायुसे सूखता है और न बुढ़ापा और मौत ही उसका स्पर्श करपाती है। रोगनाश—इसके धारणसे पित्तज, श्लेष्मज रोगनाश होजाते हैं ।

उपरोक्त नियम ४ के अनुसार वायुके अर्धभागसे धावन (दौड़ना) आवेसे पसरन, उछलन, चलन एव सकोचन ये चार पैदा हुए, परन्तु 'शिवस्वरोदय' उछलनकी अपेक्षा गन्ध मानता है।

आकाशतत्त्व विशुद्ध चक्र अर्थात् कण्ठमें स्थित है। अंग्रेजीमें भी इसको (*carotid Plexus*) कहते हैं । यह चक्र 'जन' लोकका प्रतिनिधि है। इसका रङ्ग नीला, आकृति अंडाकृति है। किसी किसीके मतमें यह निराकार भी है। इसका विशेषगुण शब्द, ज्ञानेन्द्रिय कान और कर्मेन्द्रिय वाणी है। जिसके वर्ण,* आकार,

आकाश तत्त्व

स्वाद, चाल ये प्रकट न हों ऐसाही आकाशतत्त्व मोक्षदाता एव सव कामोंमे निष्फल है। आकाशतत्त्व दाहिने स्वरमें होनेसे नीलारङ्ग देता है, व चन्द्रस्वरमें कालारङ्ग प्रकट करता है। इसी प्रकार अग्निका दाहिने स्वरमें सुर्खरङ्ग व चन्द्रस्वरमें गर्म तपाये हुए लोहेके समान होगा। 'शिवस्वरोदय' मे आकाश तत्त्वका वर्ण चित्रविचित्र और आकार बिन्दुओंका-सा है। 'मानसकल्लोलिनी' 'कल्याण योगाङ्क' पृष्ठ ८१०के अनुसार तत्त्वों के उपरोक्त रङ्गोंका समर्थन होता है। ध्यानविधि पूर्ववत् है। ह बीजका जप करते हुए निरन्तर चित्रविचित्र रङ्गवाले आकाश का ध्यान करे। इससे तीनोंकालोंका ज्ञान, ऐश्वर्य, अणिमादि-अष्ट सिद्धिया प्राप्त होती हैं। ६ मास तक भिन्न भिन्न उपरोक्त रीतियोंसे नित्यप्रति अभ्यास करनेसे तत्त्वसिद्धि होजाती है।

ह बीज गगन ध्यायेत् निराकार बहुप्रभम् ।
ज्ञान त्रिकालविषयमैश्वर्यमणिमादिकम् ॥

श्वासकीगति —यह तत्त्व केवल घूमघूमकर भवरके समान चलता है। दर्पण पर श्वास छोड़नेसे बिन्दुओं की आकृति दिखाई पडती है।

स्वाद— इसका स्वाद 'प० तड़ित्कान्तिमा' ने कडुवा लिखा है। परन्तु 'शिवस्वरोदय' में कटुक—मिर्च जैसा लिखा है।

श्वासका परिमाण— यह २० अङ्गुल तक ४ मिनट तक चलता है ।

कई इसकी गति बिलकुल न होना बताते हैं। प० तद्दित्कान्तझा ने २० अङ्गुल तक गति बतलाई है। 'शिवस्वरोदय' में गतिके विषयमें कुछ नहीं लिखा। श्री चरण-दासजी पूर्ण चलना बतलाते हैं। एक और हस्तलिखित पुस्तकमें तीन अङ्गुल तक चलना बतलाया है, परन्तु वास्तवमें यह २० अङ्गुलतक चलता है। यह बात प्रमाणित व अनुभूत है। प्रमाणित इस तरहसे है कि प० तद्दित्कान्तझा तो इसकी गति २० अङ्गुल बतलाते ही हैं और श्री चरणदासजी इसका पूर्णचलना बतलाते हैं। पूर्णचलना खूब जोरसे चलना होता है अर्थात् २० अङ्गुल कम-से कम। इसप्रकार इस पर मेरे अनुभव की पास लगगई याने पूर्ण विश्वास होगया कि यह २० अङ्गुल चलता है। अत इसके विरुद्ध किसी योगी का प्रमाण होतो प्रमाणित करनेकी कृपा करें।

श्री चरणदासजी ने ज्ञानस्वरोदयमें लिखा है —

"स्वर दोनों पूर्णचले बाहर ना प्रकाश।
श्यामरङ्ग है तासुको सोईतत्त्व आकाश॥"

आकाशतत्त्वमें नासिकासे बहुत जोरसे हवा निकलती जान पड़ती है, परन्तु स्वर शुद्ध नहीं होता, अर्थात् एक नस-कोरेसे दूसरे नसकोरेमें हवा धीरे धीरे चलती है और ज्ञात होता है कि कहीं सुषुम्ना नाड़ी न चलने लगजाय। जलतत्त्व में आनन्द आता है। इसके जाननेका तरीका यह है कि यह तत्त्व और पृथ्वी तत्त्व क्रमसे नीचेसे और बीच

में से चलते हैं। कमसे-कम मुझे तो इनका ज्ञान हमेशा आसानीसे होजाता है।

इस तत्त्वमें सिवा भगवद्भजनके अन्य कार्य नहीं करना चाहिये। शिवस्वरोदय' के अनुसार आकाश मस्तक, और 'कल्याण साधनाक' (पृ० ३१०) के अनुसार यह भौंहोंके बीचसे मूर्द्धापर्यन्त बतलाया है। क्योंकि आकाश रूप कार्य भगवान सदाशिव शुद्ध स्फटिकके समान श्वेतवर्ण हैं। जटा पर चन्द्रमा, पाचमुख, दस हाथ और तीन आँखें हैं तथा पार्वती द्वारा आलिंगित होकर वरदान देरहे हैं। इसका अभ्यास करनेसे ऐसा अनुभव होता है कि-"मैं आकाश हूँ। मेरा स्वरूप अनन्त है। देशकाल मुझसे कल्पित हैं। न मेरे भीतर कुछ है और न बाहर।" ऐसा सिद्ध होनेपर मोक्षद्वार खुल जाता है।

इन धारणाओंका साधारण क्रम यह है कि पहले पृथ्वी मण्डलका चिन्तन करके जल मण्डलमें अपनेको विलीन कर दे। जलमण्डलको अग्निमण्डलमे, अग्निको वायुमें और वायु को आकाशमें विलीन करदे। इस क्रमसे कार्यको कारणमें विलीन करते हुए सबको परमकारण सदाशिवमें स्थापित करे। अनुभवी योगियोंका ऐसा उपदेश है कि प्रत्येक मण्डलका चिन्तन करते समय प्रणव (ॐ) के द्वारा तीन तीन प्राणायाम करके कार्य मण्डल को कारणमडलमें हवन करदे—ॐअमुक मण्डलं अमुक मण्डले जुहोमि स्वाहा ।

रोगनाश—आकाश धारणासे त्रिदोष जनित सम्पूर्ण रोगनष्ट होजाते हैं। उपरोक्त नियम ४ के अनुसार आकाशतत्त्वके अर्ध-भागसे लोभ और दूसरे आधेसे मत्सर, काम, क्रोध, मोह ये चार उत्पन्न हुए। चरणदासजीने भी इसका पूर्ण समर्थन किया है, और तत्त्वोंमें भी प्राय मिलता है या नहीं नोट करदिया है। सन्ध्या विज्ञानमें स्वामी अचलदासजीने लोभ और-मत्सरकी जगह शोक और भय लिखा है तथा शिवस्वरोदयमें इसप्रकार लिखा है -

रागद्वेषस्तथालज्जा भयोमोहश्चपञ्चमः ।
नभ पञ्चगुणं प्रोक्त ब्रम्हज्ञानेन भाषितम् ॥

अर्थात् राग, द्वेष, लज्जा भय, मोह-ये पाचगुण आकाशतत्त्वके हैं।

तत्त्वोंका प्रभाव

जलतत्त्वमें बुद्धिमेंशान्ति नेककामकी सूझ, परमात्माका स्मरण, मधुर व सुगन्धित वस्तु पर रुचि होती है। इसी प्रकार पृथ्वी तत्त्वमें भी जलतत्त्वके समान ही प्रभाव होता है। वायुतत्त्वमें कसरत आदि मेहनती कार्योंका आरम्भ करना उचित है। इसमें शरीरका कोई भाग अपने आप हरकत करने लगता है, जैसे पाव आदि का स्वय हिलना चाहे। स्वयको इसका ध्यान न हो! क्रोध भी आता है। काम करनेकी उमङ्ग अवश्य होती है, परन्तु परिणाम सोचनेकी वुद्धि उत्पन्न नहीं होती। खट्टी चीजोंमें रुचि -हसी मजाक पर तवियत एव अपघात इसी तत्त्वमें होता है। याद किया हुआ खयालसे उतर जाता है। वहसमें हार होती है। अग्नितत्त्वमें आलस्य, जम्हाई, सोनेकी रुचि, पेट भारी होना, आँखोंमें सुरखी, बदनमें अङ्गडाई और गरमी मालूम होती है। नाड़ीमें तेजी, मुख खुश्क, चित्तमें मलिनता यानि सोच फिकर होगा। सोचनेकी शक्ति कम होगी, अर्थात् किसी मामलेकी नई व बड़ी तदबीर सोचना मुश्किल है। ईश्वर

तत्त्वका नाम	स्थान	आकृति	गुण	रङ्ग	स्वाद	बीज	श्वासकी गति	श्वासका परिणाम	समय
पृथ्वी (*Carbon*)	मूलाधार चक्र	चतुष्कोण	गध	पीला	मधुर	ल	नसकोरेके मध्य भागमें	१२ अंगुल	५० पल
जल (*Hydrogen*)	स्वाधिष्ठान	अर्धचन्द्राकार	रस	श्वेत	कसैला	व	नसकोरेके निचलेभागसे	१६ अंगुल	४० ,,
अग्नि (*Oxygen*)	मणिपूर	त्रिकोण	रूप	लाल	तीखा	र	नसकोरेके ऊपरके भागसे	४ अंगुल	३० ,,
वायु (*Nitrogen*)	अनाहत	षट्कोण व गोल	स्पर्श	हरा या मेघवर्ण	खट्टा	य	नसकोरेके पखवाड़ोसे	८ अंगुल	२० ,,
आकाश (*Ether*)	विशुद्ध	अडाकार गाल या विन्दु विन्दु	शब्द	रग विरगा	कड़ुवा	ह	आवर्त	२० अंगुल	१० ,,

अभ्यासोके तत्त्व जल व पृथ्वी ज्यादा रहते हैं। क्योंकि उनमें ज्यादा शान्ति व चित्त स्थिर रहता है जो अभ्यासका कारण है व बुरी वासनाओंको नष्ट करनेवाला है।

सप्तम प्रकाश

स्वर परिवर्तन विधि और लाभ

स्वरका सम्बन्ध नाड़ियोंसे है, अत स्वर परिवर्तन करना नाड़ियोंका परिवर्तन करना है, और इसके लिये उनको रोकना जरूरी है, अत जिस नाड़ीको चलाना हो उसको खुली छोड़ देवे और ,जिसको बन्द करना चाहे उसको बन्द करदेवे। नाड़ियों को रोकना साधारण काम नहीं। अन्य पुस्तकोंमें इस सम्बन्ध में बहुत ही थोड़ा लिखा गया है। पंडित तड़ित्कान्तझा व अन्य पंडितोंका यही कथन है कि यदि इड़ा नाड़ीको चलाना हो तो पिंगलाकी तरफ करवट लेकर लेटजाना चाहिये। इससे थोड़ीदेरमें इडा स्वयमेव चलने लग जायगी और यदि पिंगला चलानी होतो इडाकीतरफ करवट लेकर लेटजाना चाहिये। साधारण रूपसे इस ढगसे काम चल जाता है परन्तु कभी कभी देखनेमें आया है कि नाड़ी इस ढगसे भी नहीं बदलती है तो उस समय इसका सामना करना सिंहका सा सामना करना है। अत इसके परिवर्तन करनेका सरल परन्तु कुछ कष्टसाध्य अपना अनुभव नीचे लिखता हूँ।

सोकर स्वर बन्द करना

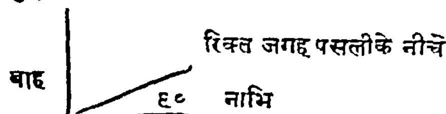
जिस स्वरको चलाना हो उस हिस्सेके अ ग हाथ आदि को शिथिल करदे, और जिधरका स्वर रोकना हो उस तरफ के हाथकी हथेलीको जमीन पर रखकर उधर के हिस्सेको दबाओ। इस साधारण रूपसे नि सन्देह स्वर सुगमतासे परिवर्तित हो जावेगा यदि जिस तरफका स्वर बन्द करना चाहे उस तरफके घुटनेको काखमें लगाकर जोरदेने से दूसरी ओरका स्वर स्वयमेव चलने लग जायगा।

हथेली पर जोर देकर स्वर बदलना

घुटनेसे स्वर बदलना

जिधरका स्वर चलाना हो उधरके हिस्सेको ऊपर रखें और जिधरका बन्द करना हो उस करवट लेट जावें। साधारण रूपसे तो स्वर बदल ही जायगा, यदि न बदले तो कोहनी को नाभि की सीधमे कमरके ऊपर पसलियोंके नीचे थोथी जगहमे कुक्षि (काख) से सीधी लाइन खींचते हुए नाभिकी लाइन पर लम्ब (*Perpendicular*) डालें व समकोण बनाते हुए थोथी जगहमे कोहनी को दबाये।

कोहनीको पसलियोंमें लगाकर स्वर बदलना



कोहनी, पसलियोंके निम्नस्थानमें जहा नल्ली डिगरीका कोण (*Angle*) बनता है, रक्खें। इससे जिधरका स्वर बन्द करना हो सारा हिस्सा दब जायगा और ऊपरका स्वर चलने लग जायगा। यदि उपरोक्त तरीकेसे स्वर न बदले तो ६ इंच यानी १२ अंगुल सिर ऊँचा उठा हुआ रक्खें और कोहनी को पसली के नीचे दबाकर रखना चाहिये। और कन्धा जमीनसे लगा रहे, जिससे स्वर बदल जायेगा।

सिरको ऊचानीचा करके व नाकसे स्वर बदलनेका ढंग

यदि फिर भी बाधा पडे तो कुछ देर तक सिर पृथ्वी और आकाशकी ओर जल्दी जल्दी उठाने और नीचे करनेसे स्वर बदल जायेगा। इससे भी स्वर न बदले तो नाकके ऊपरके हिस्से को अच्छी तरह साफकर उसमेंसे वायु (प्राण) जोर जोरसे बाहर फेंकना चाहिए और नीचेके नसकोरेमें से प्राण सर्राटेके साथ अन्दर खींचना चाहिये इससे अवश्य सिद्धि होगी। यदि इस पर भी स्वर परिवर्तन न होवे तो ऊपरके नसकोरेको पकड कर चौड़ा करना चाहिये और उसमें आसानीसे जहा तक अङ्गुली प्रवेश करसके करे और निकाले, इससे अवश्य सफलता मिलेगी। परन्तु स्वर बदलते ही स्थान छोड नहीं देना चाहिये। कई देर तक वहीं लेटे रहना चाहिए जिससे पूर्ण रूपसे इष्ट स्वर चलने लग जाय। यदि जल्दी की जायगी तो इष्ट स्वर प्राप्ति न होगी।

स्वर परिवर्तन कार्य विशेषके समय ही करना चाहिये।

हर समय करनेकी जरूरत नहीं। किसी किसी का मत है कि हर समय स्वर बदलने से शक्ति बढ़ती है। परन्तु कार्यवश हमेशा ऐसा नहीं करना चाहिये। क्योंकि वह अप्राकृतिक कार्य होगा। दबावसे स्वानुकूल स्वर करलेने पर उतना फल प्राप्त नहीं होता जितना प्राकृतिक स्वर के रहते होता है। क्योंकि नाड़ीके हठ ग्रहण करने पर कार्य आसानीसे सिद्ध नहीं होता। अतः प्रातकाल भोजनके समयके सिवा कभी कार्यवश नाड़ी परिवर्तन नहीं करना चाहिये। स्वर बदलनेके और भी आसान तरीके ये हैं—

धक्केसे बदले हुए स्वरका फल

(१) नाकमें पुरानी रुई की गोली जिसपर कपड़ा सिला हुआ हो-रक्खें।

(२) दण्ड, बैठक, दौड़- व कठोरश्रम- करनेसे भी स्वर परिवर्तन होसकता है, परन्तु शिरोरोगमे यह गोली दबाकर स्वर कभी भी नहीं बदलना चाहिये। प्रात:काल (सूर्योदय) में चाहे नाड़ी कितनी ही आपके विपरीत रहे परन्तु वह तिथिके अनुसार अवश्य बदल लेनी चाहिये क्योंकि सूर्योदयके प्रारम्भसे १ घंटे तकका समय स्वरयोगीके लिये सब से अलमूय समय बताया गया है। इससे भविष्यज्ञान होता है और २४ घंटे का समय इसी एक घंटे के अनुकूल, चलता है। शेष कार्यों में यदि जल्दी करनी हो तो उसी तरफके पैर व हाथ बढ़ाकर कार्य करना चाहिये, सिद्धि अवश्य होगी।

एक सबसे विशेष बात जो स्वरसाधकों को ध्यानमें रखनी चाहिये वह यह है कि वर्ष के प्रारम्भ होनेवाले सूर्योदयके एक मिनट व घंटेके समयसे साल भरका फल निकाला जासकता है। इसमें पहला मिनट इस विषयकी जानकारीमें अमूल्य होता है।

सूर्योदय कालके पहले क्षणका मूल्य

"स्वरसे दिव्य ज्ञान" नामक ग्रन्थके लेखक श्री प० नारायणप्रसाद तिवाड़ीका कथन है कि "घी खानेसे वामस्वर और शहद खानेसे दक्षिण स्वर चलता है।" पाठक स्वयं अनुभव कर इसे अपनावें।

घी, शहद खाने से स्वर बदलना



अष्टम प्रकाश

भिन्न भिन्न स्वरों में भिन्न भिन्न कार्य और मंत्र-बल सिद्धि

कौन सा कार्य किस स्वरमे करना चाहिये, इस विषयमें कतिपय पुस्तकोंमें कुछ कामोंके करनेके लिये चन्द्र, सूर्य दोनों स्वर लिख दिये हैं। अत इस विषयमें नोचे लिखी तालिका से पूर्ण विवेचन किया गया है और यह भी इसमे ही बताया गया है कि नियमानुसार कौन कौन से तत्त्व व वारों में ज्यादा सिद्धि होगी —

कार्य नाम	स्वरनाम	तत्त्व नाम	वार	
१ शान्तिकर्म	वाम	पृथ्वी,जल या दोनों	सोम,बुध,गुरु,शुक्र	
२ पौष्टिककर्म	,,	,,	,,	,,
३ मैत्री कर्म	,,	,,	,,	,,
४ प्रभु दर्शन	,,	,,	,,	,,
५ योगाभ्यास	,,	,,	,,	,,
६ दिव्यौषधि सेवन	,,	,,	,,	,,

कार्य नाम	स्वरनाम	तत्त्व नाम	वार	
७ रसायन कर्म	वाम	पृथ्वी, जल या दोनों	सोम, बुध, गुरु, शुक्र	
८ आभूषण पहनना	"	"	,	"
९ नूतन वस्त्र पहनना	"	"	"	"
१० पाणि ग्रहण	"	"	"	"
११ दान	"	,	"	"
१२ आश्रम प्रवेश	"	"	"	"
१३ मकान बनवाना	"	"	"	"
१४ जलाशय बनवाना	"	"	"	"
१५ बाग बगीचा लगवाना	"	"	"	"
१६ यज्ञ करना	"	"	"	"
१७ बंधु-बान्धव मित्रादि से मिलना	"	"	"	"
१८ ग्राम या शहर बसाना	"	"	"	"
१९ दूर गमन (यदि दक्षिण या पश्चिम दिशा				

अष्टम प्रकाश

भिन्न भिन्न स्वरों में भिन्न भिन्न कार्य और मंत्र-बल सिद्धि

कौन सा कार्य किस स्वरमें करना चाहिये, इस विषयमें कतिपय पुस्तकोंमें कुछ कामोंके करनेके लिये चन्द्र, सूर्य दोनों स्वर लिख दिये हैं। अत इस विषयमें नीचे लिखी तालिका से पूर्ण विवेचन किया गया है और यह भी इसमें ही बताया गया है कि नियमानुसार कौन कौन से तत्त्व व वारों में ज्यादा सिद्धि होगी —

कार्य नाम	स्वरनाम	तत्त्व नाम	वार
१ शान्तिकर्म	वाम	पृथ्वी, जल या दोनों	सोम, बुध, गुरु, शुक्र
२ पौष्टिककर्म	,,	,,	,, ,,
३ मैत्री कर्म	,,	,,	,, ,,
४ प्रभु दर्शन	,,	,,	,, ,,
५ योगाभ्यास	,,	,,	,, ,,
६ दिव्यौषधि सेवन	,,	,,	,, ,,

कार्य नाम	स्वरनाम	तत्त्व नाम	वार	
७ रसायन कर्म	वाम	पृथ्वी, जल या दोनों	सोम, बुध, गुरु, शुक्र	
८ आभूषण पहनना	,,	,,	,	,,
९ नूतन वस्त्र पहनना	,,	,,	,,	,,
१० पाणि ग्रहण	,,	,,	,,	,,
११ स्नान	,,	,	,,	,,
१२ आश्रम प्रवेश	,,	,,	,,	,,
१३ मकान बनवाना	,,	,,	,,	,,
१४ जलाशय बनवाना	,,	,,	,,	,,
१५ बाग बगीचा लगवाना	,,	,,	,,	,,
१६ यज्ञ करना	,,	,,	,,	,,
१७ बधु-बान्धव मित्रादि से मिलना	,,	,,	,,	,,
१८ ग्राम या शहर बसाना	,,	,,	,,	,,
१९ दूर गमन (यदि दक्षिण या पश्चिम दिशा				

कार्य नाम	स्वरनाम	तत्त्व नाम	वार
में जाना हो)	वाम	पृथ्वी,जल या दोनों	सोम,बुध गुरु,शुक्र
२० पानी पीना, पेशाब करना	,,	,,	,, ,,
२१ कठिन और क्रूर क्रिया	दक्षिणस्वर	,,	मंगल,शनि या रवि
२२ शस्त्राभ्यास	,	,,	,, ,,
२३ शास्त्राभ्यास दीक्षादि	,,	,	,, ,,
२४ संगीत	,,	,,	,, ,,
२५ सवारी	,,	,,	,, ,,
२६ व्यायाम	,,	,,	,, ,,
२७ नौकारोहण	,,	,	,, ,,
२८ यन्त्र तन्त्र रचना	,,	,,	,, ,,
२९ पहाड़ या दुर्ग पर चढना	,,	,,	,, ,,
३० विषय भोग	,,	,,	,, ,,
३१ युद्ध	,,	,,	,, ,
३२ पशु पक्षी का क्रय विक्रय	,,	,,	,, ,,
३३ काटना छाँटना	,,	,,	,, ,,
३४ कठोर योगाभ्यास	,,	,,	,, ,,
३५ राजदर्शन	,,	,,	,, ,,
३६ विवाद	,,	,,	,, ,,

३७ किसीके समीप जाना	”	”	”	”
३८ स्नान	”	”	”	”
३९ भोजन	”	”	”	”
४० पत्रादि लेखन				
४१ ध्यान धारणादि परमात्मचिन्तन	”	”	”	”

सुषुम्ना (इसमें तत्त्व और वारका असर नहीं पड़ता)।

यह तालिका प० तड़ित्कान्तझाके अनुसार सक्षेपमें बताई है। इसका जो अनुभव मेरे जीवनमें आया है उसका दिग्दर्शन करना परमावश्यक है।

नाड़ीगति ३० से ५० तक रहती है। बहुत कम नाड़ीगति दिल व दिमागकी बिमारी प्रकट करती है। बहुत ज्यादा गुरदे व उदरके किसी हिस्से की बीमारी बतलाती है। स्वर चैतन्य की तरफसे वैद्य नाड़ी देखे। रोगीकी जो नाड़ी (चन्द्र सूर्य यानि इड़ा पिंगला) चल रही हो उसी हाथ की नाड़ी देखनेसे रोग का निदान ठीक होता है। सुषुम्नामें नाड़ी देखना दिखाना निषेध है। अग्नि तत्त्वमें नाड़ी जल्दी जल्दी व बारीक चलती है आकाश तत्त्वमें दबी हुई, हल्की व बारीक और सख्यामें अधिक चहती है। जल और पृथ्वी तत्त्वमें नाडी मन्द मन्द, इकसार तादादमें मामूली दोनों अङ्गुलियोंके नीचे इकसार धार वाली होती है।

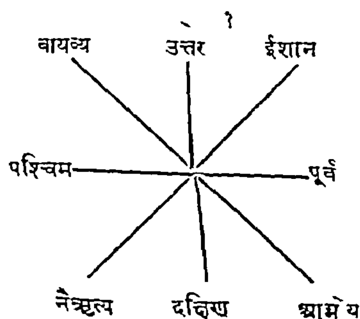
यह निर्विवाद सिद्ध है कि शान्त एव स्थिर कर्म यथा — आश्रम बनाना, विवाह करना, प्रभु दर्शन करना आदिमें चन्द्र नाड़ी पूर्ण फलप्रदा है। यदि पृथ्वी और जलतत्त्व बह रहे हों और गुरु, शुक्र और बुधवार हों तो यह सोनेमें सुगन्ध है। आकाश तत्त्व दोनों नाड़ियोंमें अल्पफलदायक है और कठिन व चरकर्म (यथा शस्त्राभ्यास, युद्ध, व्यायाम- आदि) दाहिने स्वरमें सफल होते हैं। यदि इस स्वरमें मङ्गल, शनि और रवि हों तो और भी अधिक सफलता मिलती है।

जो सज्जन किसी भी ग्रन्थमें एक ही काम दोनों नाडियों में लिखा हुआ देखें तो उन्हें अपनी बुद्धिसे यह तय करना होगा कि अमुक कार्य कठोर है या शान्त और यदि कठोर होतो दाहिने स्वरमें तथा शान्त होतो बाये स्वरमें करना चाहिये। उपरोक्त कामों के सिवा वाम स्वरमें अन्य कार्य भी 'शिव-स्वरोदय' के अनुसार किये जासकते हैं यथा —

आश्रम, हवेली, मन्दिर आदि का निर्माण, वस्तु सग्रह, बावड़ी, कूप, तालाब, देवता और स्तम्भादि की प्रतिष्ठा वाणिज्य, स्वामि दर्शन, खेती, विद्यारम्भ, जन्म, मोक्ष, धर्म दीक्षा, मन्त्र साधन काल ज्ञान सूत्र, पशु सग्रह, काल-व्याधि-चिकित्सा, हस्त्यश्वरोहण धनुर्विद्या, हस्त्यश्व बन्धन परोपकारकरण, अमूल्य द्रव्यागार सग्रह, गायन वादन बर्त्तन, गायन शास्त्र विचारण, पुर ग्रामादिक प्रवेश, राज्याभिषेक, पीड़ा-शोक-विषाद-ज्वर-मूर्छा निराकरण, स्वजन स्वामी,

समिलन, धान्यकाष्ठसग्रह, स्त्रियोंके दन्त आदि आभूषण धारण, गुरुपूजन और विपदूरी-करण, धारण, प्रतिष्ठा, तीर्थ-यात्रा, दक्षिण पश्चिम गमन, कीमियागिरी।

ठहा काम, नूतन ग्रन्थ लेखन, मन्त्र-मण्डल-निर्माण एव वैधानिक कार्यारम्भ में व पश्चिमोत्तर तथा दक्षिण पश्चिम कोणके गमन में मेरी सम्मतिमें वामस्वरका होना परमावश्यक है। हृदयकी आकृतिको देखनेसे ज्ञात होगा कि इसकी आकृति में इसका दाहिना भाग नीचे पीछे दाहिनी ओर झुका हुआ है। बाया हिस्सा ऊपर बाईं ओर सामनेको झुका हुआ है अत दाहिने स्वरकी दिशा उत्तर पूर्व है, क्योंकि पूर्व व उत्तरमें फेफडे का बाया हिस्सा बढा हुआ है और सामने को भी बढा हुआ है जो चन्द्रमाका स्थान है यानि ठण्डा, अत उधर जानेको गर्मी चाहिये जो दाहिने स्वरमें है। इसी प्रकार बायेका हाल जानो।



उपरोक्त तालिकाके अतिरिक्त 'शिव स्वरोदय' मे कठोर व चरकर्म, मारण उच्चाटन आदि विद्याओंम, स्त्री संग, वश्यागमन, महानौका आदि मे चढ़ना, भ्रष्टकार्य, मदिरापान, वीरमन्त्र आदि की उपासना, विह्वलपना, देशका नाश, वैरियोंको विपदेनमें गमन, शिकार, पशु वेचना, ईंट काठ पत्थर रत्न इनको घिसना तथा फोड़ना, गतिका अभ्यास, यन्त्र तन्त्र, किला वा पर्वत पर चढ़ना, जुआ, चोरी, हाथी, घोडा, रथ इन वाहनोंका साधन करना, षट्कर्मोंकी सिद्धि, यक्षिणी यक्ष वैताल, विष आदि का रोकना, गधा, ऊँट, भैंसा, हाथी, घोडे पर चढ़ना, नदीके जलमें तैरना, औषध लेना, लिपि लिखना, मोहन, स्तभन, विद्वेष, वशीकरण, प्रेरण, आकर्षण, क्रोध, दान, खरीदना, वेचना, हाथमे तलवार लेना, वैरीके साथ युद्ध भोग, राजदर्शन भोजन, स्नान, क्रूरव्यवहार, अग्नि प्रदीप्त करना पिंगलाके कार्य लिखे है।

पिंगलाके कार्य

राजनीति वार्ता, चरगुप्तकार्य, भेद निकालना, दौत्य कार्य, कठिन व क्रूर विद्याओंका पढ़ना तथा पढाना अनेक पदार्थोंका भोग, स्त्री वशीकरण, सेवा कर्म, भूत प्रेतादि साधना सरकारमें अर्जी देना, विष भूत उतारना, रोगीको औषध देना, नया चौपड़ा लिखना, सट्टा करना, कर्ज द्रव्य लेना, पूर्वोत्तर गमन, पूर्व दक्षिण गमन, नदी पार करना, ऊँचा चढना, कुश्ती लड़ना, अर्जी देना, बीमारीका इलाज करना, द्यूत क्रीड़ा में दाहिने स्वरकी प्रमुखता बताई गई है।

इस तरहसे वाणिज्य, क्रय विक्रय, सवारी विष आदि के उतारने में "शिव-स्वरोदय" दोनों नाड़िया ठीक बतलाता है परन्तु वास्तवमें व्यापार विषयमें यह देखना है कि दाहिना स्वर ठीक रहता है या बांया ? मन्त्रसाधन हेतु देखकर दाहिने बायें स्वरमें कार्य करना चाहिये और अन्य कार्योंमें जहा शका उत्पन्न हो वहा कार्यकी कठोरता या सरलता देखकर निर्णय करना चाहिये। क्योंकि प्राय मेरे देखनेमें आया है कि बाये स्वरमें भी उन कार्योंकी सिद्धि किसी सीमातक होती है जो दाहिने स्वरमें लिखे हैं, पर भयकर काम सदा दाहिने स्वरमें करने चाहिये। सन्देहास्पद कार्यमे बुद्धिबलसे यथा संभव चर, कठोर, क्रूर, नीच कर्म दाहिने स्वरमें और इसके विपरीत वायें स्वरमें करने चाहिये। यह एक अनुकरणीय साधारण सा नियम है। प्रधानता इस नियमकी रखनी चाहिये कि चरकाम पिंगला नाड़ीमें और स्थिर काम इडा नाड़ीमें होना चाहिये। यथा-अश्व, गर्दभ, गयन्द आरोहणका दायें और बायें दोनों स्वरोंमें विधान है, परन्तु यह चर कार्य है और कठोर भी है अत' बायें स्वरमें न होकर दायें स्वरमें होने चाहिये। साराश यह है कि सवारी आरोहण सर्वदा सूर्य स्वरमें करना चाहिये।

कतिपय अन्य ग्रन्थोंके आलोडन व स्वकीय अनुभवसे ज्ञातहुआ है कि निम्नलिखित काम निम्नाकित नाड़ियोंमें होन. चाहिये —

गृह प्रवेश दाहिने स्वर में न करना चाहिये, क्योंि एक बार मैंने अपने *Transfer* (स्थानान्तर) के सम

राजगढ़ से सूरपुरा जाकर दाहिने स्वर में गृह प्रवश किया, जिससे मैं वहा केवल दो मास भी मुश्किल स ठहर पाया। अतः गृह प्रवेश हमेशा वामस्वर मे करना समीचीन होगा।

पूर्व लिखित कार्य जो भिन्न भिन्न स्वरोंमें वतलाये गये हैं उनमें से अधिकाश को मैंने अपने दैनिक एव व्यावहारिक जीवन में अपनाकर अनुभव प्राप्त किया है कि वे बिल्कुल ठीक है और उनके अनुसार फल प्राप्ति के अनन्तर आत्मानन्द अनुभव कर हार्दिक विजयोल्लास की भावना स्फुरित होती है।

मेरा विशेष अनुभव

सन् १६४२ में मेरी धर्मपत्नीने मन्थरज्वर से ग्रसित हो २८ दिन निराहार निकाल दिये। मन्थरज्वर दोप निराकरण होने पर भी मलेरियाने उसका पिंड न छोड़ा। आखिर वैद्य और डाक्टरों से विचार विमर्श किया और वैद्योंके मतानुसार मैं कुनैन की एक मात्रा देनेको तैयार हुआ।, जबकि डाक्टरों की राय इसके विपक्षमें थी और डाक्टरोंने इसे खतरे की घण्टी बताया था। परन्तु जिस समय मेरा और मेरी धर्म पत्नी दोनोंका दाहिना स्वर चलने लगा तो प्रात काल ६ बजे से १२ बजेके बीच में मैंने कुनैनकी ४ मात्रा देदी। इसका महान् चमत्कार यह पाया कि बुखार अपने किरायेके मकान को खाली करगया और किसी प्रकारके खतरेकी आशका न रही। मेरी इस स्वर यथानुसारिणी चिकित्साका हाल सुनकर

ियगण अचम्भित हुए और भविष्यमें ऐसे स्वरके सम्मिलन पर औषधोपचार करनेकी इच्छा प्रकट की। साराश यह है कि ईश्वरप्रदत्त इस स्वरके सहयोगसे अनेक शारीरिक व्याधियोंके ऊपर हम सहज ही विजय पासकते हैं।

स्वर और मंत्र बलका सानिध्य

मैं मन्त्रबल चिकित्सामें भी आस्था रखता हूँ। इस कार्य में दाहिने स्वरकी परम अपेक्षा रहती है। इसका प्रयोग एक बार मैंने पूज्य दादीजी और अपनी स्त्री पर किया जो मलेरिआ-ज्वराक्रान्त थी। उन दोनों की स्थिति देख प्राय. सभीने कुनैन देने की सलाह दी, जब कि मैं बगैर कुनैन दिये मलेरियाको दबाने का उपाय सोच रहा था। सहसा मुझे अपने आत्मबल, मन्त्र और स्वर पर भरोसा याद आने पर उन्हें प्रयोगमें लाना उचित समझा। मैंने एक नीली तथा एक पीली बोतलके पानी में सूर्य रश्मियोंसे एक औषधका निर्माण किया और सूर्य-नाडीमें मन्त्र चिकित्सा की तो उसी दिन मलेरिया भाग गया। अपने सफल प्रयोगको प्रत्यक्ष देख पीलिया रोग ग्रस्त अपने एक चपरासीका सूर्य नाड़ीमें मन्त्र द्वारा ठीक किया। परन्तु यह ध्यान रहे कि मन्त्र चिकित्सामें आदमीको अपनी बहुत-सी शक्ति व्यय करनी पड़ती है और जरा कष्ट भी उठाना पडता है। क्योंकि इस स्थितिकी सफलता प्राप्तिके लिये बहुत शक्तिसाध्य नियम का परिपालन करना जरूरी होजाता है। इन सबमें आत्मशक्ति और विश्वास जितना ही प्रचुर होगा,

उतना ही जल्दी कार्य उत्पन्न होगा। सन् १६३५ की बात है-हमारे घरमें विवाह था। मेरे मित्र प० सीतारामजी अध्यापक स्टेट स्कूल सरदारशहर हमारे यहाँ वैवाहिक कार्योंमें सहयोग दे रहे थे। उसी समय उनके घरसे एक लड़की चिल्लाते हुए बच्चेको लेकर आई और कहने लगी कि-"इसे बिच्छूने काट खाया है।" उसी समय मैंने अपने स्वरको सभाला और जाना कि इस समय पूर्ण सूर्य स्वर चल रहा है। मैंने अपने आत्म बलसे आगे बढकर उसकी मन्त्र चिकित्सा प्रारम्भ करदी। थोड़ी देरमे रोता हुआ वह बालक हसता हुआ घर चला गया। कहनेका तात्पर्य यह है कि इस प्रकारकी चिकित्सा भी अपना महत्त्व रखती है और यदि उसे सविधि किया जाय तो विस्मय कारी फल देनेवाली होती है। विस्तार भयसे अन्य उदाहरणों का-उल्लेख असमीचीन होगा।

स्वरोंमें व्यति क्रम

कतिपय दाहिने स्वरके काम बाये स्वरमें और बाये स्वर के काम दाहिने स्वरमें भी सिद्ध होते देखे गये हैं और मैंने स्वय भी अनुभव किया है। 'शिव स्वरोदय' में भी लिखा है कि-'जिस समय जो स्वर चलता हो उस समय वही पैर, हाथ आगे बढाकर जावे तो प्रत्येक कार्यमें किसी सीमातक सिद्धि प्राप्त होती है। यथा -

चन्द्र समपद कार्यो रविस्तु विषम सदा ।
पूर्णपाद पुरस्कृत्य यात्राभवति सिद्धिदा ॥

इस नियमको विशेषपरिस्थितिमें ही बरतना चाहिये, क्योंकि

इसमें कभी कभी सिद्धि नहीं मिलती। पर प्राय सिद्धि मिलती देखीगई है। इसका सबसे अधिक वैज्ञानिक तथ्य यह है कि जीव स्वर की तरफका शारीरिक हिस्सा नाडियोंके निरन्तर प्रवहण होनेसे सशक्त, सबल और चैतन्य रहेगा। उसके पहले उठाने से कार्य सम्पादनमें तत्परता रहेगी और कार्य शीघ्र होगा। अत हर हालतमें वही हाथ पैर काममें लाकर कार्य करना चाहिये जो स्वर चलरहा हो परन्तु वास्तवमें देखा जाय तो पूर्ण सिद्धि उसी स्वरमें मिलती है जिस स्वरका जिस कार्यमें होना अपेक्षित होता है। उदाहरणार्थ भोजन दाहिने स्वरमें किया जाता है, इससे वैज्ञानिक लाभ यह है कि इस स्वरमें किया हुआ भोजन शीघ्र पचता है एव तृप्ति प्राप्त होती है। भोजनमें कोई कमी प्रतीत नहीं होती चाहे देखने वालेको अच्छा न लगे। भोजनावधि तक किसी प्रकारकी चिढ, अशान्ति बुरा विचार, अड़चन आदि नहीं आती एव पूर्ण रस बनता है। किसी प्रकार की बाधा नहीं मालूम पड़ती। यदि इसके विपरीत उपरोक्त स्थितिमें चन्द्र स्वर हो तो ये कार्य अवश्य होंगे —अड़चन, अशान्ति, बुरा विचार और अति बाधा। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है। यदि आप इसे सत्य न मानें तो एक दिन अपने जीवन में व्यवहार करें। आप अवश्य चमत्कारी फल देखेंगे। चन्द्रस्वरमें भोजन प्रारम्भ करते ही समाचार मिलेगा कि कोई विशेष व्यक्ति आप से मिलने की प्रतीक्षामें है, जिससे मिलना आपके लिये परमा वश्यक है। यदि थोड़ी देर यह मान भी लिया जाय कि आप भोजन करते हुए न उठें, परन्तु आये हुए व्यक्तिकी स्थितिसे

एक प्रकारसे सारे कार्योंमें शीघ्रता और अशान्ति किसी न किसी अशमें अवश्य होगी। इससे आपका खाया हुआ अन्न लाभप्रद व आनन्दप्रद न होकर विरुद्ध रस पैदा करेगा। इसका निर्णय आप किसी वैद्य या डाक्टरसे करा सकते हैं, कि क्या इस प्रकार किया हुआ भोजन *Natural course* ले लेगा ? क्या आपकी उसपर पूर्ववत् रुचि रहेगी ? कदापि नहीं। चन्द्र स्वरमें भोजन करनेसे वह अरुचिकर, तिक्त, गरिष्ट, कमस्वादु, क्रोधोत्पादक और दुर्गुणोत्पादक ही होगा। देखनेमें सुन्दर होने पर भी हमारे मनको रुचिकर न होगा। रुचिकर न होनेसे वह दूसरे कारणोंसे कब्ज, पेटका दर्द, श्वास, कास, हृदय-स्पन्दन, आतका रुकजाना, यकृतप्लीहाका बढ जाना, अर्श, सिर दर्द, पाण्डु रोग और खूनकी कमी आदि आदि बिमारियोंका उत्पादक होगा। इसी प्रकार जिस स्वरमें जो बात कही गई है उससे विरुद्ध स्वर होतो सबन्धित वस्तुविशेषके विचार से परिणाम निकालना चाहिये। मै यहाँ विस्तारभयसे उपरोक्त प्रकारकी प्रत्येक वस्तुपर विवेचन न कर यह काम मर्मज्ञ पाठकों पर ही छोड़देता हूँ। भविष्यत्में यदि पाठक इस बातकी विशेष जानकारी प्राप्त करना चाहेंगे तो अगले सस्करणमे इसका विशद विवेचन करूगा।

पत्र लेखन में दक्षिणस्वर ठीक है। इससे लाभ यह होगा कि मस्तिष्कमें नूतन विचारोंकी उत्पत्ति अपने आप होगी और कोई बात नहीं लिखी जायगी जो कालान्तरमें लेखकके

विपरीत सिद्ध हो। ऐसे स्वरमें लिखी हुई बात पक्की और कड़े से कड़ा निर्णय भी न्याय सगत होगी। उस कभी उलटना न पड़ेगा। इसके साथमें यहभी विशेषता है कि लिखते समय बड़ा आनन्द आता है और नई नई सूझ पैदा होती है।

कभी कभी दोपहरमें वामस्वर की स्थिति में बड़े जोर की भूख लग जाती है, यदि उस समय भोजन करलिया जायतो आलस्यकारी ही होगा आपकी दैनिक कार्यप्रणालीका अवरोधक भी होगा। विशेष करके स्वरसाधकको कभी मिठाई, बड़े आदि न खाने चाहियें। यदि खाना ही पड़े तो केवल दाहिने स्वरकी स्थितिमें क्योंकि उसकी विद्यमानतामें जठराग्नि प्रबल होती है और अति कठोर वस्तु भी सुपाच्य होसकती है।

दाहिने स्वरमें राजनीति सम्बन्धी वार्ता और पत्र लेखन में बड़ी सफलता मिलती है, क्योंकि उस समयमें बात करने, विचारने और गहन से गहन विषयके समझनेमें कोई कमी नहीं रहती। ऐसा जान पड़ता है कि सरस्वतीका वरदहस्त हमारे पर है और हम आसानीसे सारा काम सम्पादित कररहे हैं। विरुद्ध पक्षमें कमजोरी स्वयमें वाग्विदग्धताका आभास अनोखा होता है। अनपढ़ आदमी भी अपनी कार्यसिद्धि पर सन्तोष प्रकट कर केवल अपने भाग्यको सराहा करता है, क्योंकि उसे क्या पता कि उसके स्वरने भी उसकी सफलतामें सहयोग दिया है जब कि अनजानमें उसने सच्चे स्वरमें कोई कठिनकार्य

एक प्रश्न उठ सकता है कि जिस समय राजनीति आदि उपरोक्त बातें करनी हों उस समय यदि दाहिना स्वर न चले तो क्या किया जाय ? इसका संक्षेपमें यही समाधान है कि राजनैतिक वार्ता आदि निश्चित समय पर होनेवाले कार्योंके तीन चार घण्टे पूर्व बाँया स्वर चला लेना चाहिये जिससे बादमें बहुत देर तक दाहिना स्वर चलता रहे। इससे विशेष लाभ यह भी है कि बाँयें स्वरमे पुष्टी, शान्ति आदिकी प्राप्ति होती है और राजनैतिक वातावरणकी गरमागरम बहससे पूर्व इन सबका होना नितान्त जरूरी है, जिससे उस कार्यमें पूरा भाग लेकर उससे लाभ उठाया जा सके।

परीक्षणके लिये एक उदाहरण प्रस्तुत करते है। स्वर-शास्त्रानुसार मूत्र विसर्जन (पेशाव) बाये स्वरमें करना चाहिये, परन्तु आप परीक्षा करके देखेंकि किस स्वर की स्थितिमें पेशाव करनेसे शारीरिक लाभ व सुख शान्ति मिलती है। आपका अनुभव ही इसके पक्ष या विपक्षमें अपना मत देगा, परन्तु फिरभी याद रक्खें कि विरुद्ध स्वरमें टट्टी पेशाव करनेकी आदत को रोकें जहा तक बनसके। और यदि भोजन दाहिने स्वरमें व पानी चन्द्रस्वरमें पिया जावेगा तो टट्टी पेशाव भी स्वरानुसार ही क्रमिकाभ्याससे अपने आप अभ्यास पड़ जायगा और इस प्रकार नियमानुसार कार्य करनेसे सिद्धि प्राप्त होगी।

दाहिने स्वरमें जल पीनेसे पेशाव सम्बन्धी प्रमेह, पथरी का बनना, शर्कराका जाना आदि आदि बिमारियां उत्पन्न होंगी, क्योंकि दाहिना स्वर अग्नि है। और जैसे गरम तवे

पर पानी डालाजावे तो पानी अपना उचित असर नहीं दिखला सकता और इससे परिणाम बुरा ही निकलता है, वही परिणाम दाहिने स्वरमें जल पीनेसे होगा। अत पेय पदार्थका प्रयोग दाहिने स्वरमें न करके चन्द्र स्वरमें करना चाहिये।

भोजन दाहिने स्वरमें व पानी बायें स्वरमें पीनेसे टट्टी भी दाहिने स्वरमें व पेशाब बायें स्वरमें स्वय होने लगजावेगा। यानि पेशाव और टट्टी साथ साथ नहीं होंगे। जैसे आजकल मानव प्राणियोंके कृत्रिम भोजन पानसे देखनेमें आता है। पशु पक्षियों व छोटे छोटे स्वस्थ बच्चोंमें ऐसा नहीं होता कारण कि प्रकृतिके अनुसार उनका व्यवहार चलता है जब कि मनुष्य का व्यवहार इससे विरुद्ध देखनेमें आता है।

यह एक अनुभूत ज्ञान है कि नये चन्द्रका दर्शन इड़ा नाडीमें करना चाहिये। ऐसा करनेसे उस मासमें सर्वसिद्धि, सर्वानन्द एव सर्वशान्ति होती है और उस मासमें किसी प्रकारका कष्ट नहीं भोगना पड़ता। यदि किसीके कोई बिमारी चलरही हो तो वह प्रतिपदाको उचित स्वर चलाकर इड़ा नाड़ी में नये चन्द्रका दर्शन करले तो शरीर स्वस्थ और पूर्णानन्द होगा कठिनातिकठिन कार्य भी उस मासमें सिद्ध हो जायेंगे। यदि इसके विपरीत दक्षिण स्वरमें चन्द्र दर्शन किया जायगा तो पूर्व फलोंके विपरीत कार्य होगा और मास भर अशान्ति रहेगी। होसकता है कि आपको अचानक ही स्थान परिवर्त्तन

इडामें नये चन्द्र का दर्शन

हुत समय तक करना पडे। साधारण रूपमे प्रतिदिन इडा ाड़ीमें चन्द्रदर्शन शुभ होता है।

दाहिने स्वरकी स्थितिमे प्रातःकाल ही दाहिने स्वरमे सूर्यदर्शन करना अत्युत्तम होगा। ऐसा करनेसे उसदिन हर तरहका आनन्द रहकर कार्य सिद्धि होगी। वैसे आमतौर पर हर तिथिको दाहिने स्वरमें सूर्यदर्शन करना उत्तम होगा।

सूर्य दर्शन

साधारण रूपसे सुषुम्नानाडी सासारिक कामोंमें असफलता देती है। इस नाड़ीमे क्षणक्षणमें बाया दाया स्वर चलता हुआ मालूम पडेगा और दोनों नसकोरोंमे ही हवा आवेगी तथा कोई भी नाड़ी साफ चलती नजर न आयेगी। अर्थात् यह दोनों नाडियोंके बीचमें स्थिर रहने वाली नाड़ी है। यह स्थिति एक उचित संध्या (भगवत्पूजा) की है। जो नर भगवत भजनसे कुछ आत्मानन्द प्राप्त करना चाहें उन्हें चाहिये कि वे इसके चलने पर ही यदि ईशस्तवन करेंतो उन्हें अपने काममें शीघ्र सफलता मिलेगी। क्योंकि इसके चलने पर सासारिक झगडोंसे मन हटकर अच्छी स्थिति में स्थित रहता है जिसमें मन मनवाञ्छित स्तवन कर आत्मानन्द प्राप्त करता है। यह नाडी शरीरकी सन्धा – या सन्धि है। जिस प्रकार सूर्यके अस्त होते ही दिन रातकी सन्धि होने पर ईशपरायण–नर सन्ध्या करने बैठ जाते हैं, वैसे ही मुमुक्षुजन किसी भी समय स्वशारीरिक सध्या बनाकर भगवत

सुषुम्ना नाडी

भजन कर सकते हैं। उन्हें सांसारिक मनुष्योंके समान प्रकृति की बनावटकी ओर नहीं देखना पड़ता। 'शिव स्वरोदय' में इसे हर कार्यको नाश करनेवाली लिखा है, बात उचित भी है, क्योंकि इसके प्रवहण समयमें अग्नितत्त्व काल रूपसे प्रज्व-लित रहता है, अत इसे सब कार्योंकी नाशक, विषमयी अग्नि समझें। इसमें क्रूर या सौम्यकार्य करने पर वे निष्फल होते हैं। इसके बहते समयमें किसी प्रकारके सांसारिक कामका चिन्तन न कर केवल ईशस्तवन करना चाहिये। कुछ स्वर ज्ञानियोंका सिद्धान्त है कि इसके चलने पर शाप या वरदान देना श्रेष्ठ समझा गया है। *



---

* भारतमें इस समय भी लाखों आदमी नित्यसन्ध्या करते हैं, परन्तु उनमेंसे फल प्राप्ति एक दो को भी मुश्किलसे होती है। कारण यह कि न तो वे सन्ध्या यानी सन्धिको समझते हैं, और न वे अपने अच्छे कार्यों द्वारा हृदयको शुद्ध रखते हैं। याद रक्खो-यदि सुषुम्ना स्वरमें पूरक समयमें प्रार्थना कीजाय तो वह अचूक होगी। इसमें कोई सन्देह नहीं है। अत सुषुम्ना में पूरक समयमें जो प्रार्थना कीजाती है वह पूर्ण फलप्रदा है।

नवम प्रकाश

जय, पराजय, गर्भाधान, भाग्योदय, आग बुझाना, बध्यापुत्रोत्पत्ति संततिनिरोध

संसारमें बहुधा बुद्धिबलसे सफलता मिलती है, परन्तु फिर भी तत्त्वभेदसे इसका निर्णय करना चाहिये। यदि तत्त्व ठीक न होगा तो सफलताकी कमी रहेगी। स्वरके अन्दर प्रवेश करने पर सफलता और निकलने पर प्रायः असफलता देखीगई है।

कार्यसिद्धि करण

यदि कोई मन चाहा काम करना चाहे या किसी को अपने पक्षमें करना होतो गमनके समय जो नाड़ी चलती हो उसी ओर का पैर पहले उठाकर चलनेसे सफलता मिलेगी परन्तु मिलनेके काममें हमेशा दाहिने स्व में सफलता देखी गयी है। उपरोक्त रीति चन्द्रस्वर (वामस्वर) में भी सफलता प्रा हो सकती है। मेरा यह अनुभव है कि वामस्वर चलता हो त

सम्मिलन आदि का काम

२, ४, ६ आदि सम पैर और सूर्यस्वरमें १, ३, ५ विषम पैर आगे रखकर यात्रा करनेसे सिद्धि प्राप्त होती है।

प्राय सफलता बिना तत्त्वका ध्यान किये ही मिलती देखी गई है। इसमें ऐसा होता है कि जो कार्य करवाना हो उस समय जो स्वर चलरहा है उसी तरफ उस पुरुषको रखकर बात-चीत करनी चाहिये। यह एक स्वानुभूत योग है। यदि सफलता न मिले तो याद रक्खें कि इसका तत्त्व या अन्तर्तत्त्व ठीक न था। झा साहबका कथन है कि ऐसा करने पर, आपका विरोधी भी आपकी इच्छानुसार काम करनेमें प्रवृत्त हो जायगा। परन्तु मैं इससे सहमत नहीं हूँ, सभवत उन्होंने इसे साधारण नियमरूपसे लिखा हो, अन्यथा विरोधी, शत्रु, राक्षस, नीच आदिको चलते स्वरकी ओर न रखकर खाली स्वरकी ओर रखना चाहिये। इसका कारण यह है कि ऐसे पुरुष शत्रुश्रेणी में आते हैं और यदि उन्हें खाली स्वरकी ओर रक्खा जायगा तो वे हमारे श्वासको न पी सकेंगे। इसी प्रकार प्रथममें अपने बुद्धि बलसे मित्र या शत्रुका निर्णयकर चाहे अपना अफसर भी विपरीत रायका हो, उसके साथ पहलेके समान बैठना चाहिये, इससे वह अपनी मनमानी बात उस पर न थोप सकेगा, या उसे न दबा सकेगा। इसी प्रकार व्यापारमें, दुष्ट पुरुषको-जो हमारेसे उच्चाटन, ठगी, चोरी आदि करना चाहे-उसे रिक्त स्वरकी तरफ रखना चाहिये। रिक्त स्वरकी तरफ काल, भयकर शस्त्र, सर्प व्याधि होने पर भी उस पुरुषका कुछ बिगाड़ न सकेगी।

इसी प्रकार लेन देन आदिमें भी वही हाथ, अग कामम लाना चाहिये, जिधरका स्वर चल रहा हो। ऐसा करनेसे किसी तरह का नुकसान या अशान्ति न पडकर काम सफलताके साथ होता है।

किसीके साथ युद्धमें दाहिना स्वर उत्तम माना गया है। इसमें जो अपने शत्रु पर वार करता है उसकी हमेशा जीत होती है परन्तु अपने शत्रुको सदा खाली स्वरकी ओर रखकर हमला करना चाहिये। ऐसा करनेसे यदि वह हमारे ऊपर आक्रमण करेगा तो उसका आघात खाली जायगा। यदि दो परस्पर शत्रु हैं और उन दोनों की दाहिनी नाडी चल रही हो तो जो शत्रु पहले घरसे निकलेगा उसकी विजय होगी। यदि सब बातें समान हों तो न्याय पथपर चलनेवालेकी विजय होगी, क्योंकि उसके मन और प्राणमे सबसे अधिक बल, यौवन और आशा होगी। कुछ लोगोंका मत है कि यदि दूर देशमें युद्ध करना हो

समरमें स्वरोंकी उपादेयता

हमेशा आपके चलते हुए स्वरकी ओर ही होगा। शून्यस्वर वाला अंग हमेशा रक्षितरहता है।

यहाँ पर आपकी सुविधाके लिये नीचे एक तालिका दी जारही है जिससे आप काफी लाभ उठा सकते हैं। यदि कोई प्रश्नकर्ता अपना पूर्णस्वर लेकर उत्तर-दाताके पास आवे अर्थात् दोनोंका स्वर उचित हो तो युद्धमें गये हुए को कुशल माने और यदि विपरीत अवस्था होतो इस तरहसे अपने सम्बन्धीके विषयमें जाने—

पृथ्वी तत्त्व हो तो पेटमें	घाव लगा है,	ऐसा	समझना	चाहिये।
जल तत्त्व हो तो पैरमें	,,	,,	,,	,,
तेज तत्त्व हो तो छातीमें	,,	,,	,,	,,
वायु तत्त्व हो तो जांघमें	,,	,,	,,	,,
आकाश तत्त्व हो तो मस्तिस्कमे	,,	,,	,	,,

बाये या दाहिने स्वरके चलने पर यदि दूतयुद्धकी बात चलते हुए स्वरकी ओरसे पूछे तो जानना चाहिये कि घात नही लगा, और यदि खाली स्वरकी तरफसे पूछे तो घात बताना। समर में भिन्न भिन्न नाड़ियोंके चलने पर नीचे लिखी दिशाओंकी ओर खड़ा होवे तो विजय होगी।

१-चन्द्र नाडी चलने पर—उत्तर या पूर्व दिशा की तरफ।

२ सूर्य नाड़ी चलने पर—दक्षिण या पश्चिम दिशाकी तरफ।

इसी प्रकार लेन देन आदिमें भी वही हाथ, अंग काममे लाना चाहिये, जिधरका स्वर चल रहा हो। ऐसा करनेसे किसी तरह का नुकसान या अशान्ति न पड़कर काम सफलताके साथ होता है।

समरमें स्वरोंकी उपादेयता

किसीके साथ युद्धमे दाहिना स्वर उत्तम माना गया है। इसमें जो अपने शत्रु पर वार करता है उसकी हमेशा जीत होती है परन्तु अपने शत्रुको सदा खाली स्वरकी ओर रखकर हमला करना चाहिये। ऐसा करनेसे यदि वह हमारे ऊपर आक्रमण करेगा तो उसका आघात खाली जायगा। यदि दो परस्पर शत्रु हैं और उन दोनों की दाहिनी नाड़ी चल रही हो तो जो शत्रु पहले घरसे निकलेगा उसकी विजय होगी। यदि सब बातें समान हों तो न्याय पथपर चलनेवालेकी विजय होगी, क्योंकि उसके मन और प्राणमें सबसे अधिक बल, यौवन और आशा होगी। कुछ लोगोंका मत है कि यदि दूर देशमें युद्ध करना हो तो चन्द्रमा विजय दाता है और समीप देशमे सूर्य, तथा शस्त्र उसी अंगकी तरफसे चलाना चाहिये जिधरका स्वर चलरहा हो। युद्धमें भयकरसे भयकर शत्रुको भी जीता जासकता है यदि चलती हुई नाड़ीको कान तक खींचकर समरमें चले। शत्रुको कभी अपने जीव (चलायमान) स्वरकी ओरसे हमला करने का अवसर न दें। ऐसा न करने देनेसे वह चाहे कितना ही बलवान क्यों न हो हमे जीत नहीं सकता। याद रक्खें घात

हमेशा आपके चलते हुए स्वरकी ओर ही होगा। शून्यस्वर वाला अंग हमेशा रक्षितरहता है।

यहां पर आपकी सुविधाके लिये नीचे एक तालिका दी जारही है जिससे आप काफी लाभ उठा सकते हैं। यदि कोई प्रश्नकर्ता अपना पूर्णस्वर लेकर उत्तर दाताके पास आवे अर्थात् दोनोंका स्वर उचित हो तो युद्धमें गये हुए को कुशल माने और यदि विपरीत अवस्था होतो इस तरहसे अपने सम्बन्धीके विषयमें जाने—

पृथ्वी तत्त्व हो तो पेटमें घाव लगा है,	ऐसा	समझना	चाहिये।	
जल तत्त्व हो तो पैरमें	,,	,,	,,	,,
तेज तत्त्व हो तो छातीमें	,,	,,	,,	,,
वायु तत्त्व हो तो जांघमें	,,	,,	,,	,,
आकाश तत्त्व हो तो मस्तिस्कमें	,,	,,	,	,,

बांये या दाहिने स्वरके चलने पर यदि दूतयुद्धकी बात चलते हुए स्वरकी ओरसे पूछे तो जानना चाहिये कि घात नहीं लगा, और यदि खाली स्वरकी तरफसे पूछे तो घात बताना। समर में भिन्न भिन्न नाड़ियोंके चलने पर नीचे लिखी दिशाओंकी ओर खड़ा होवे तो विजय होगी।

१-चन्द्र नाड़ी चलने पर—उत्तर या पूर्व दिशा की तरफ।

२ सूर्य नाड़ी चलने पर—दक्षिण या पश्चिम दिशाकी तरफ।

यदि वामस्वरमें चलकर युद्ध किया जाय तो आक्रान्ता की हार होती है। यदि कोई दो पुरुषोंके युद्धका एक ही बार प्रश्न करे और प्रश्नकर्ताकी ओर जीवस्वर चलता हो तो पहले की जय बतावे या जाने। यदि प्रश्नकर्ता वाये स्वरमें प्रश्न करे तो सधि होगी। सूर्यस्वरमें प्रश्न करने पर युद्ध होगा। इस प्रकार स्वरज्ञानी अपने स्वरबलकी सहायतासे इन्द्र ब्रम्हादिक देवताओंसे भी अधिक बल रखनेकी क्षमता रखता है।

आजका ससार विना पुत्रोंके और अधिक पुत्रियोंके पैदा होनेसे चिन्तित है। उसे दूसरेसे इस विषयमें सहायता न लेकर अपने शरीरस्थित ज्ञानसे सहायता लेनी चाहिये। मनुष्य स्वर साधन द्वारा इच्छानुसार फल प्राप्त कर सकता है। इसमें अणुमात्रभी सन्देह नहीं है।

गर्भाधान

वैदिक शास्त्र मतानुसार स्त्रीके रजस्वला होनेके तीन दिन बाद, चौथे दिनसे १६ वें दिन तक गर्भाधानका समय उचित समझा है। इनमें भी उत्तरोत्तर दिन अच्छे माने गये है। *यथा*

पुत्रोत्पत्ति

४, ६, ८, १०, १२, १४, १६ वीं रात क्रमश उत्तम रात्रिया मानी गई हैं और कन्याकी उत्पत्ति के लिये ५ ७, ९, ११, १३, और १५ वीं रात्रि ठीक मानी गई है। यदि सुपुत्र पैदा करना हो ना जब पुरुषकी पिंगला नाडीमें जल या पृथ्वी तत्त्व वहता हो और स्त्रीकी इडा नाडी में जल या पृथ्वी तत्त्व वहता हो तो उस समयमें सम्बन्ध करनेसे पुत्रोत्पन्न ही होगा। क्योंकि पिंगला नाड़ी दाहिने अग की प्रधान नाड़ी होनेके कारण उस अ गका अधिक मन्थनकर

वहींसे ज्यादा वीर्य निकालती है और उसमें पुरुषत्वमय वीर्य होनेसे पुत्रोत्पन्न ही होगा। यदि इसके विपरीत स्वरमें काम किया जायगा तो कन्या होगी। सुषुम्ना नाड़ीमें सूर्यके प्रवाह में स्त्री प्रसग करनेसे कुरूप पुत्र पैदा होगा।

यदि स्त्री प्रसग करते समय पुरुषका सूर्य हो और वीर्य-केपात समयमें चन्द्रस्वर चलने लग जाय और स्त्रीका स्वर भी वाम स्वर रहे तो गर्भस्थिति न होगी। क्योंकि यह एक निश्चित सिद्धान्त है कि पुरुष और स्त्रीका एकस्वर हो तो गर्भ नहीं रहता। आजकल नूतन सभ्यताभिमानी, फैसनपरस्त विलासमय जीवन में पलनेवाले स्त्री पुरुषोंके लिये यह एक स्वर्ण उदाहरण सामने रक्खा जाता है कि-वे इस सिद्धान्तका मननकर इसे क्रियात्मक रूप दें तो उन्हें बहु-सन्तानके भारसे शीघ्र ही छुटकारा मिल सकता है। साथमें उन्हें किसी औषधि सेवनका झमट भी न करना पडेगा। आजके युगमें सन्तान निग्रहके लिये अनेक प्रकार की औषधिया, यन्त्र आदि किये जाते हैं। इससे केवल योग में आनन्दकी किसी प्रकारकी कमी न आकर घातक बिमारियों का शिकार होना पडता है, और प्राकृतिक स्वास्थ्यसे भी हाथ धोना पड़ता है। प्राय देखनेमें आया है कि स्त्री पुरुषों में मनमुटाव हो जाया करता है। इसका एक मात्र कारण बीसवीं शताब्दीकी औषधिया ही हैं। स० २००३ में इसी तरहका एक तलाकका केस अमेरिकामें हुआ, जिसमें पुरुषने अपनी पत्नी

गर्भ न रहना

पर यह अभियोग लगाया कि-"मेरा, अपनी स्त्रीके साथ विवाह होनेके वाद आज (सात-आठ वर्ष) तक वास्तविक सबन्ध (*Consummation of marriage*) नहीं हुआ क्योंकि वह संगमके समय पेशारी (वस्तु विशेष) काममें लाती रही है। अत तलाक होना चाहिये।" इस प्रकारके बखेडे आजके जमाने में स्वरसिद्धान्तके ज्ञानकी कमीके कारण हुआ करते हैं। स्वरसिद्धान्तके ज्ञाताओंको इन समस्याओंका सामना ही नहीं करना पड़ता।

वंध्याके पुत्र

वध्याके भी पुत्र उत्पन्न होसकता है यदि ऋतुके प्रारम्भ में पुरुषका सूर्यस्वर और स्त्रीका चन्द्रस्वर चले एवं दोनोंका सगम हो जाय, परन्तु संगमके आरम्भ में पुरुषका सूर्य स्वर चले और वीर्यपातके अनन्तर चन्द्रस्वर बहने लगे तो उस क्रमयोगसे स्त्री गर्भधारण नहीं कर सकती। जैसे "शिव स्वरोदय" में लिखा है—

ऋत्वारभे रवि पुसा स्त्रीणा चैव सुधाकर ।
उभयो सगमे प्राप्ते वध्यापुत्रमवाप्नुयात् ॥
ऋत्वारम्भे रवि पुसाँ शुक्रान्तेच सुधाकर ।
अनेन क्रमयोगेन ना दत्ते दैव दारुकम् ॥

"चाहे दिन चाहे रात, यदि सुपुम्ना नाडी चलने लगे, या सूर्य नाड़ी चलरही हो और अग्नितत्त्वका उदय हो तो गर्भाधान करनेसे वध्यामी सन्तानवती हो जाती है।' यह भा साहवका

मत है, परन्तु 'शिव स्वरोदय' का मत इससे विरुद्ध है। उसका कथन है कि —

विषमाके दिवारात्रौ विषमाके दिनाधिप ।
चन्द्र नेत्राग्नि तत्त्वेषु वन्ध्यापुत्रमवाप्नुयात् ॥

अर्थात्- ऋतुके अनन्तर विषम दिनोंमे पुरुषका सूर्य स्वर दिन या रात्रिमें चले व स्त्रीका चन्द्रस्वर चले और पृथ्वी, जल, अग्नि तत्त्वोंमें गर्भाधान होतो वन्ध्याके भी पुत्र हो जाता है। परन्तु इन दोनों भिन्न भिन्न मतोंकी जाच समय और लगन रखने वाले ज्ञानी जन ही कर सकते हैं। मेरे मतानुसार अगर मनुष्य शुद्ध विचारसे पुत्रोत्पत्तिके हेतु ही अपनी स्त्रीसे सगम करे और मनुष्यका सूर्य स्वर हो तथा स्त्रीका चन्द्र स्वर हो व जल तत्त्व हो तो स्त्री गर्भवती होती है और उसे अवश्य पुत्रकी प्राप्ति होती है। मैंने यह योग चार सज्जनोंको बताया जो मेरे पास यह प्रश्न लेकर आये थे। उनमेंसे तीनको सफलता मिली यानि उन्हें पुत्र प्राप्ति हुई।

गर्भाधानमें भिन्न भिन्न तत्त्वोंका प्रभाव

योग दीपक में ऐसा लिखा है कि अग्नितत्त्वमें गर्भाधान से गर्भपात, वायुतत्त्वमे गर्भगलना, आकाशतत्त्वमें गर्भाधान से नपुंसक सन्तान उत्पन्न होती है। 'शिव स्वरोदय' में बताया है कि वायु तत्त्वमें गर्भाधान हो तो दुःखदायक पुत्र उत्पन्न होता है। जल तत्त्व में सर्वसुखदायक और सर्वविख्यात, अग्नि तत्त्वमें गर्भपात या कम आयुवाला, पृथ्वी

तत्त्वमे,द्रव्य और भोग आदिसे युक्त, आकाशतत्त्वमे गर्भाधान हो तो गर्भ नष्ट हो जाता है। इस प्रकार सभी तत्त्वोंका पारस्परिक विवेचन करलेनेसे हमें मालूम पड़ता है कि पृथ्वी और जल तत्त्व ही श्रेष्ठ हैं। अवशिष्ट तत्त्व अशुभकारी हैं। किसी किसी के मतानुसार सुपुम्नाके समयमें युगल सन्तान पैदा होती हैं, उसका कारण बुद्धिमान पुरुषोंको सोच समझकर अन्वेषण करना चाहिये।

केवल गर्भ रहने या न रहनेका प्रश्न करे, और पूरक उत्तरदाता का स्वर हो और खाली स्वर की ओर से प्रश्न हो तो उत्तर देना चाहिये कि गर्भ रहगया है। पूर्ण सफलता उस समय ही होगी जब पति या स्वय गर्भवती प्रश्न करे, वरना उत्तर देना उचित नहीं है। यदि जीव स्वरकी ओरसे पूछे तो कहना चाहिये कि गर्भ नहीं रहा। चन्द्र स्वर चलते समय गर्भका प्रश्न करे तो उत्तरदाताको बताना चाहिये कि कन्या होगी और सूर्यस्वर चले तो पुत्र। सुपुम्नामें गर्भपात या नपुंसक होना बतावे। जो स्वर चलरहा हो और उसी हाथ की तरफ पूछनेवाला आकर बैठे तो उसे बताना चाहिये कि उसके पुत्र होगा। वायु व पृथ्वीतत्त्व चलता हो तो पुत्र, अग्नि तत्त्वमें गर्भपात, आकाशतत्त्वमें नपुसक- ऐसा विज्ञजनोंको जानना चाहिये।

गर्भके विषयमें प्रश्न

गर्भमें लड़का या लड़की है ? इस प्रश्नको जाननेके लिये यदि प्रश्नकर्ता आपके पास आवे और आपका स्वर दाहिना

हो और आनेवालेका स्वर वायां चलता है तो निःसन्देह उत्तर दे सकते हैं कि लड़का होगा। पर मरजानेका भय है। इसके विपरीत स्वर हो तो लड़की होकर मरनेका भय है। दोनों पुरुषों-अर्थात् प्रश्नकर्ता और उत्तरदाताके चन्द्रस्वरोंकी एकतामें लड़की उत्पन्न होगी। और यदि दोनोंका दाहिना स्वर हो तो लड़का उत्पन्न होगा। सुषुम्नामें प्रश्न किये जाने पर गर्भपात होकर माताको कष्ट होगा। आकाशतत्त्वमें प्रश्न किये जाने पर निश्चित रूपसे आप कहसकते हैं कि गर्भपात होगा प्राय मेरे देखनेमें यह आया है कि प्रश्नकर्ताके अपढ होनेके कारण वह यह नहीं बता सकता कि उसका कौनसा स्वर चलरहा है, अतः उसको उत्तरदाताके स्वर पर ही निर्भर रहना पड़ता है। ऐसी स्थितिमें दाहिने स्वरमें लड़का और चन्द्रस्वरमें लड़की होगी। यह बात प्राय ठीक उतरती है।

रोगी संबंधी प्रश्न

यदि कोई प्रश्नकर्ता रोगीके सम्बन्धमें बाईं ओ से प्रश्न करे और उत्तरदाताका सूर्यस्वर चलरहा हो तो रोगी नहीं बचेगा। जीवस्वरकी ओरसे प्रश्न किया जावे तो कहना चाहिये कि रोगी बचेगा। यदि वामस्वरमें बाईं ओर से प्रश्न किया जाय और पृथ्वीतत्त्व हो तो एक मासमें रोगी ठीक होजायगा। यदि सुषुम्ना हो और गुरुवार हो एवं वायुतत्त्व भी चलरहा हो तो रोगी मरेगा नहीं, परन्तु यदि शनिवार हो और आकाशतत्त्व हो तो रोगी उसी रोगसे मर जायगा।

चन्द्रनाडीमें प्रश्नके समय जल, पृथ्वीतत्त्वमे एक रोग और बाकी तत्त्वोंमें ज्यादा रोग बतलाने चाहिये। सूर्यस्वरमे अग्नि, वायु, आकाशमे एक रोग और पृथ्वी जलमें अनेक रोग समझने चाहिये।

प्रवास सम्बन्धी प्रश्नोंमें निम्नलिखित उत्तर देना चाहिये

प्रश्न करते समय पृथ्वी तत्त्व होतो प्रवासमें कुशलता।

" " जल " " रास्तमें पानीकी बाढ।

" " अग्नि " " कष्ट।

" " वायु " " प्रवासी आगे चलागया है।

" " आकाश " " प्रवासी रोगी होगया है।

" " सुषुम्ना ; पृथ्वी व आकाश तत्त्वका संयोग हो तो प्रवासी मर जायगा। परन्तु जीव व पूरक स्वरका हरएक प्रश्नमें ध्यान रखकर निर्णय करना चाहिये वरना असफलताका सामना करना पड़ेगा।

जिस किसीको भाग्योदयकी वृद्धि करनेकी आवश्यकता हो उसे नीचे लिखे नियमोंके साथ साथ पूर्णरूपेण अभ्यास करनेसे सिद्धि प्राप्त होगी। यह एक अनुभूत योग है। भाग्यवादी परीक्षा करके इन नियमों का अनुसरण करें तो वे भाग्यका भरोसा छोड़कर पुरुषार्थकी महत्ता स्वीकार करेंगे। हमेशा जितनी भी शीघ्रता होसके सूर्योदयसे पहले उठे और, उठते समय पूरक स्वरसे-अर्थात् पूराश्वास अन्दर नाभि तक भरते हुए उठे। उठते समय

भाग्योदय

जिस ओर की नाकमें श्वास चल रहा हो उस तरफके हाथको मुँह पर फेर कर उसका दर्शन करे और उसी तरफका पैर पृथ्वी पर रख शय्या त्याग करे, तथा अपनेमें आत्मबल वृद्धि के लिये ईश्वरसे प्रार्थना करे कि-मेरे भाग्यमें अमुक अमुक वृद्धि हो। ऐसा मनन कर उसी ओर का पैर पहले पृथ्वी पर रख कर बिस्तरेको छोड़ दे और सोचे कि-अब मेरी दिनों दिन उन्नति होगी और अब मैं सर्वदा सुखी रहूंगा। इस प्रकार करने से वह अवश्य सुखी होगा, और बराबर वृद्धि करता हुआ दिखलाई पड़ेगा। इसमें जरा भी सन्देह नहीं, परन्तु नित्य नियमित रूप और लगनसे करने पर ही यह नियम फलदायक होगा।

आग बुझानेकी विधि 'झा' के मतानुसार यह है कि कहीं आग लगने पर जिस ओर पवन की गतिसे आग बढ़रही हो उस दिशामें पानीका पात्र लेकर खड़ा हो जाय, फिर जिस नथूनेसे श्वास चलरही हो और उससे श्वास अन्दर खींचते हुए उसी नथूनेसे थोड़ासा पानी पियें और पात्रमेंसे सात रत्ती जल लेकर अंजलि से आग पर छिड़क दे, थोड़ी देरमें आग आगे न बढ़कर बुझ जायगी। किसी किसीका मत यह है कि सातरत्ती जल लेकर इस मंत्रसे -

आग बुझाना

"उत्तरस्याच दिग्भागे मारीचो नाम राक्षस
तस्य मूत्र पुरीषाभ्याहतो वह्नि स्तम्भ स्वाहा"

अभिमन्त्रित करके अग्निमें डालदेना चाहिये। इसका बहुत

बार प्रयोग करके आश्चर्य जनक प्रभाव देखा गया है। इससे अनेक पुरुषोंकी धन सम्पतिकी रक्षा हुई है। क्या ही अच्छा होता यदि भारत अपनी प्राचीन विद्याओंको न भूलकर वर्तमान समयमें (१९४७ ई० में पजाब आदिमे) होनेवाले सैकड़ों काण्डों जैसी विपत्तियोंसे अपनी रक्षा करता। परन्तु खेद है कि इस विज्ञान को जाननेकी उत्सुकता तो दूरही इसका नाम सुनकर ही लोग नाक भौंह सिकोडते हैं। ध्यान रहे कि शरीरमें भी कोई गूढ शक्ति है जो सात रत्ती जलसे आग बुझा सकती है। इस विद्या के वास्तविक ज्ञाता न होनेसे इसका प्रचार ससारमे वहुत ही कम है। आजका नागरिक जीवन हमें इनसव विचित्र विद्याओं की जानकारीके लिये प्रेरित कर रहा है।

स्वरकी सहायतासे व्यापार करने पर हमेशा लाभ ही लाभ होता है, नुक्सान कभी नहीं होता इसकी सहायतासे

मेरे विशेष अनुभव

प्रात काल जब आँख खुले तो मन चाहा फल प्राप्त करनेके लिये ईश्वरसे यों प्रार्थना करे–"हे ईश्वर! मेरी अमुक इच्छा अमुक समय तक पूर्ण कर।" केवल इतना ही कहकर अपने दैनिक जीवन में सलग्न होजाय। केवल मात्र इतने नियमके पालन करनेमें ही ऐसी जबर्दस्त शक्ति छिपी हुई है जो हर मानव को आश्चर्य चकित करदेती है। यह ध्रुव सत्य और अनुभूत है। इस प्रकारके नियम पालन करनेवालेका मनदृढ संकल्प-युक्त होना चाहिये। उस समयमे डावाडोल स्थिति नहीं होनी

चाहिये। मैने इससे बडी बड़ी समस्यायें हल की हैं और आज भी कररहा हूँ। परन्तु इस आत्मशक्तिसे किसीका बुरा करने के लिये अनुचित लाभ नहीं उठाना चाहिये। इससे सफलता के स्थान पर असफलताकी सभावना अधिक रहती है। ससार में भले काम जो देखनेमें पहले कठिन और असाध्य से मालूम पड़ते हैं, उन कामोंको अवश्य इस क्रियाके द्वारा निष्काम कर्म-सिद्धान्तकी कसौटी पर कसकर करना चाहिये। इससे आशातीत सफलता प्राप्त होगी। ऊपर जो समय या काल उपरोक्त विधिके सम्पादनके लिये बतलाया गया है उसमें अधिकता या कमीके लिये हमें प्रकृतिके नियमोंकी ओर ध्यान देकर लाभ उठाना चाहिये। साराश यह है कि जिस कामके बननेमें जितने समयकी अपेक्षा रहती है उतना समय हमें अवश्य देना चाहिये। जैसे किसीको सन्तानोत्पत्ति की इच्छा हो तो उसे कम-से-कम एक वर्षका समय अपनी इच्छा पूर्ति करनेके लिये देना चाहिये और साथ साथ में नित्य एक पृष्ठ "ॐ,ॐ,, का लिखना चाहिये, परन्तु लिखते समयमें इच्छा सिद्धिकी ओर ध्यान रखनेसे कार्यसिद्धि सरलता और शीघ्रतासे होती है। ऐसा मेरा पूर्ण अनुभव है।



दशम प्रकाश

नये वर्ष का फल

वर्षके आरम्भमे वर्षका फल निर्णय करना चाहिये। चैत्र शुक्ला प्रतिपदाको, मेष सक्रान्तिको (सौर वर्ष) दक्षिणायन या उत्तरायणके प्रारम्भमें, अक्षय तृतीया या माघ शुक्ला सप्तमी को जमानेका हाल पहले ही जानलेना चाहिये। मेष राशिकी सक्रान्ति जिस समय लगे उस समय खूब सूक्ष्म विचार करके निर्णय करना चाहिये। मैंने पिछले दो तीन वर्षों के विशेष रूपसे चैत्र शुक्ल पक्षकी प्रतिपदाको सूर्योदयके समय वर्ष फलका निर्णय करके देखा है और वह निश्चित रूप से सही उतरा है।

सूर्योदयके समय भगवानका ध्यान करके चैत्र शुक्ला प्रतिपदाको प्रातः काल देखना चाहिये कि चन्द्रस्वर चलरहा है या अन्य स्वर, चन्द्रस्वरमें जल तत्त्व बहता हो तो अधिक वर्षा होगी और अच्छा जमाना होगा। पृथ्वी धन धान्यसे पूर्ण होगी, परन्तु मलेरियाकी शिकायत होने की सम्भावना रहती

है पर बहुत अच्छा जमाना हो जानेसे उसकी प्रतीति नहीं होगी। पृथ्वीतत्त्व होनेसे जमाना अच्छा जरूर होता है, परन्तु वर्षा उतनी नहीं होती जितनी कि जलतत्त्वमें। अग्नितत्त्व चलता हो तो अकालका भय रहेगा। ससारमें सघर्ष बहुत होगा। वायुतत्त्वमें जमाना ठीक ठीक होगा परन्तु राजविग्रहका भय रहेगा। आकाशतत्त्वमें भयकर अकाल पडेगा और पृथ्वी पर भीषण भय उत्पन्न होगा। सुषुम्ना नाड़ी चलरही हो तो महा अकाल, राजाओंमें हेर फेर, भयकर बीमारिया और यत्रणा आदिका भय रहेगा, एव अपनी मृत्युका भी भय रहेगा। जल व पृथ्वीतत्त्वमें प्रत्येक कार्यकी सिद्धि होती है। रणकी विजय, न्यायसे राज्य सचालन, सब जगह शान्ति स्थापन और शत्रुओं की हार होगी।

इसी प्रकार मेष संक्रान्ति, अक्षय तृतीया आदिके दिन प्रात काल स्वरतत्त्व देखकर निर्णय करना चाहिये। दाहिने स्वरमें पहलेसे कम फल होगा, इसका निर्णय सोच समझ कर देना चाहिये। इनमें प्रत्यन्तरतत्त्व और कड़ाई, नर्मी आदि का भी स्वरोंमें भान होता है। इसलिये बहुत ही शान्तिके साथ सूक्ष्मातिसूक्ष्म निर्णय करना चाहिये। सूर्यके स्वरमें चन्द्रमा और चन्द्रमाके स्वरमें सूर्य चलने लगजाय तो अन्न समह करने से लाभ होगा। सूर्य स्वरमें अग्नि और आकाशतत्त्व का उदय हो तो अन्न आदि का सग्रह करनेसे दो मासके बादमें महगाई आनेसे लाभ होगा। जोधपुर निवासी श्रीरामलालजी ने

अपनी पुस्तक "सत्य ज्ञान चिन्तामणि" में लिखा है कि यदि चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को सुषुम्ना हो तो मृत्यु प्रगट होगी-अर्थात् उसवर्षमें अकाल-मृत्यु अधिक होगी। निर्णय देते समयसबसे अधिक आसपास के प्रान्तका भविष्य बतलाना चाहिये। क्योंकि आसपासके प्रान्तमें इसका निर्णयफल अधिक ठीक मिलता है और दूर देशोंके लिये कम। वैसे साधारण रूपसे सभी जगहका फल ठीक ठीक मिलता है।

एकादश प्रकाश

श्वास-प्रश्वाससे आयुका संबन्ध

श्वास-प्रश्वाससे आयुका बहुत घनिष्ठ सबन्ध है। एक मिनटमें जो प्राणी कम से कम श्वास लेता है उसकी उतनी ही ज्यादा उम्र होती है।

हम नीचे लिखी तालिकासे बतायेंगे कि कौनसा प्राणी एक मिनटमें कितने श्वास लेने के कारण कितने वर्ष जीवित रहता है। हमें इस तालिकासे शिक्षा लेनी चाहिये कि गहरी और धीमी श्वाससे हम अपने छोटे मानव जीवनको कितना बढा सकते हैं। वह तालिका इस प्रकार है —

प्राणी नाम	प्रति मिनट	पूर्ण आयु (वर्षोंमें)
खरगोश	३८ श्वास	८ वर्ष
बन्दर	३२ ,,	१० ,,
कुत्ता	२६ ,,	१२ ,,
घोड़ा	१६ ,,	२५ ,,
मनुष्य	१३ ,,	१२० ,,
सर्प	८ ,,	१००० ,,
कछुआ	५ ,,	२००० ,,

यहां पर कुछ और प्राणियोंकी तालिका देते हैं उनके श्वासकी प्रति मिनटकी गति निश्चित न होनेके कारण सिर्फ उनकी जीवनावधिका उल्लेख करते हैं :—

प्राणी नाम	आयु (वर्षोंमें)	
ह्वेलमछली	५००	वर्ष
पारकमछली	२००	,,
मगर	१००	,,
हाथी	१००	,,
बाज	१००	,,
राजहंस	१००	,,
कौआ	१००	,,
सॉमिनमछली	१००	,,
बगुला	६०	,,
बानमछली	६०	,,
हंस	६०	,,
गिद्ध	५०	,,
अबाबील	५०	,,
सिंह	४०	,,
चिम्पाजी	४०	,,
ऊंट	४०	,,
गौरैया	३०	,,
चकता	३०	,,
गाय	२५	,,
सुअर	२४	,,

प्राणी नाम	आयु (वर्षोंमें)
मोर	२४ ,,
सारस	२४ ,,
कबूतर	२० ,,
बुलबुल	१८ ,,
लावा	१८ ,,
बकरी	१५ ,,
तीतर	१५ ,,

इस प्रकार ससारमें जितने प्राणी हैं उनकी आयु श्वास-प्रश्वासकी गतिके अनुसार अधिक या कम होती है। किसी किसी का मत है कि मनुष्य एक मिनटमें १३ की अपेक्षा १५ श्वास साधारण रूपसे लेता है। मेरे मतसे भी यही सिद्धान्त ठीक है। यह बैठे हुए मनुष्यके श्वासकी गतिका लेखा है। भिन्न भिन्न परिस्थितियोंमें श्वासकी गति अधिक या कम भी हो सकती है। जसे गाते समय १६ बार, खाते समय २० बार चलते हुए २४, शयन (सोते) समय ३०, मैथुन समयमें ३६ श्वासकी गति बतलाई है। जो आदमी इसको जितना कम खर्च करता है वह उतनी ही अपनी आयु बढाकर नई नई शक्तियां प्राप्त कर सकता है। श्वास साधारण रूपसे बाहर निकलते समय १२ अगुल व अन्दर जाते १० अगुल तक क्रिया करता है। यहां हम पाठकों की ज्ञानपिपासा शान्त करनेके लिये रुचिकर तालिका दे रहे हैं।

ज्ञान पिपासा शान्त करने की तालिका

१–श्वासकी	स्वाभाविक गति	१२ से	घटाकर जो	११	तक	लाता है,	उसके प्राण स्थिर हो जाते हैं।
२ ,,	,,	,	,,	१०		,, ,,	उसे महान् आनन्द प्राप्तहोता है।
३ ,,	,,	,,	,,	९		,, ,,	उसमें कवित्त्व शक्ति आती है।
४ ,,	,	,,	,,	८		,, ,,	उसे वाक् सिद्धि होती है।
५ ,,	,,	,,	,,	७		,, ,,	उसे दूरदृष्टि प्राप्त होती है।
६ ,,	,,	,,	,,	६		,, ,,	वह आकाशमें उड़ सकता है।
७ ,,	,,	,,	,,	५		,, ,,	उसमें प्रचण्ड वेग आता है।
८ ,,	,,	,,	,,	४		,, ,,	उसे सब सिद्धिया प्राप्त होती हैं।
९ ,,	,,	,,	,,	३		,, ,,	उसे नव निधिया प्राप्त होती हैं।
१० ,,	,,	,,	,,	२		,, ,,	वह अनेक रूप धारण करसकता है
११ ,,	,,	,,	,,	१		,, ,,	वह अदृश्य होसकता है।
१२ ,,	,,	,,	,,	प्राणकी गतिका प्रमाण यदि नखाग्र रहजाय तो उसे यमराजभी नहीं खासकता अर्थात् वह अमर बनजाता है।			

इस साधनाके लिये यौगिक क्रिया बहुत आवश्यक है और प्राणायाम इसमें पहली सीढी है। यौगिक क्रिया गुरु द्वारा ही प्राप्त की जासकती है। इस ससारमें विरले ही ऐसे सिद्ध पुरुष हैं जिन्होंने इसे स्वय प्राप्त किया हो, अन्यथा किसी न किसी गुरुके चरणोंमें बैठकर ही इन विद्याओंका अभ्यास किया जा सकता है। दीर्घ आयुष्याभिलाषी जनोंको चाहिये कि वे हमेशा श्वासको नाभि तक लेजाकर छोडे, नहीं तो कोई विशेष लाभ नहीं होता है।

आजकल ससारमें बहुत-से पुरुष निष्क्रिय बैठकर सोचा करते हैं कि-उनकी उम्र बढ रही है। उनका सिद्धान्त है कि कम काम करनेसे शक्तिका ह्रास कम होता है। इस प्रकारकी भ्रान्त धारणाओंको अपनानेसे उनके अंग निर्बल हो जाते हैं और बिमारियाँ सहज ही में घर दबाती हैं जिससे श्वास की गति बढ कर उनकी उम्र कम हो जाती है। अत हर एक मनुष्यका यह कर्तव्य है कि प्रकृतिके नियमानुसार प्रतिदिन डटकर तल्लीनताके साथ अपनी शक्तिके अनुसार काम करना चाहिये। इससे प्राण वायु नियमानुसार चलती रहेगी। इसी ज्ञानका समर्थन गीता भी करती है और हमें कर्मयोगी बनने का उपदेश देती है, जिसे जानना हरएक योगी और गृहस्थके लिये परमावश्यक है। योगका ज्ञान हिन्दू-धर्म शास्त्रानुसार प्रतिदिन अवश्य करना चाहिये, जिसमें बहुत-से हमारे धार्मिक कृत्य भी सम्मिलित हैं। हम वैज्ञानिक उपकारोंको भूलकर ही प्रतिदिन अवनत हो रहे हैं। आप क्या नवयुवक और क्या

वृद्ध 'सध्या' को एक झंझट समझते हैं, पर 'सध्यामें' सबसे सुन्दर वस्तु प्राणायाम है। इसके न करनेसे कितनी ही बिमारियोंसे मानव समाज ग्रस्त है। प्राणायामके बिना मनुष्य की शक्ति आन्तरिक दूषित वायुके बाहर न निकलनेके कारण प्रतिदिन कम होती जा रही है। यही कारण है कि हिन्दू-जाति प्रतिदिन रसातलको जा रही है। यदि हम अब भी प्राणायाम का अभ्यास करें तो अपनी वर्तमान बिमारियोंसे और विशेष कर अल्पायु, मृत्यु, यक्ष्मा और श्वासकी बिमारियोंसे बहुत शीघ्र छुटकारा पा सकते हैं। इसे जितना ही ज्यादा किया जायगा उतनी ही श्वास लेने-में कमी होगी। कम श्वास लेना ही आयुवृद्धिका मूल कारण है। इससे बढकर आयु बढानेकी और कोई औषधि नहीं है। विशेष करके फेफडोंकी बिमारियों का तो-यह कट्टर शत्रु है। ऐसी बिमारिया शरीरके पास भी नहीं फटकती। यह एक ध्रुव सत्य है। यदि अधिक जीनेकी इच्छा हो तो प्रत्येक मानवका कर्तव्य है कि वह श्वास-प्रश्वास की गतिका शरीरसे अभिन्न सबन्ध समझकर मननपूर्वक अधिक-से-अधिक प्राणायामका अभ्यास करे।

द्वादश-प्रकाश

मृत्यु, रोग एवं आपत्ति का पूर्व ज्ञान तथा उनका निराकरण

मृत्युः—

प्रत्येक बुद्धिमान पुरुषको वर्ष, पक्ष और तिथिके प्रारंभ में सूर्योदयके समय स्वरानुसार मृत्यु, दुःख, बीमारी आदि की पूर्वपरीक्षा करके ज्ञान प्राप्त करलेना चाहिये। प्रातःकाल प्रतिदिन मनुष्यको आगामी २४ घण्टे का पूर्णज्ञान स्वरकी सहायतासे होसकता है। वैसे साधारण रूपसे प्रत्येक मनुष्यको आगामी घटनाओंका साधारण ज्ञान अवश्य रहता है, परन्तु ऐसा ज्ञान स्वर-विज्ञान-वेत्ताको ही होसकता है।

जो दिनभर सूर्यस्वर बन्द रक्खे और रात्रिको चन्द्रस्वर बन्द रक्खे अर्थात् दिनमें चन्द्र और रात्रिमें सूर्यस्वर चलावे ऐसे पुरुषको योगी जानना चाहिये। उसकी आयु १२० वर्षकी पूर्णायु होती है। जिस पुरुषका श्वास रात दिन एक स्वरमे ही चले उसका मरण तीन वर्षमे हो जाता है परन्तु ज्ञान महोदय और योगशास्त्र भाषान्तरके लेखक हेमचन्द्र आचार्यके मतानुसार यदि आठ पहर तक दाहिना स्वर यानि सूर्यनाडी मे वायु चले तो तीन वर्षमे मृत्यु अवश्यम्भावी है।

दो दिन तक पिंगला (सूर्य) नाड़ीमें वायु चले तो २ वर्ष की आयु शेष रहती है और तीन दिन दाहिना स्वर चले तो एक वर्षमें मृत्यु होती है यदि एक मास तक दिनमें सूर्यस्वर और रात्रिमें चन्द्रस्वर लगातार चले तो ६ माहमें मृत्यु अवश्यम्भावी है। तीस दिन रात केवल सूर्यनाड़ी चले तो तीन मासमें मृत्यु होती है। पाच घड़ी सुषुम्ना नाड़ी चलकर न बदले तो उसी दिन मृत्यु होती है।

मतान्तरमें एक महिने तक सूर्य नाड़ीमें वायु चलता रहे तो एक रात्रिमें ही उसकी मृत्यु होजाती है।

मतान्तरमें नीचे लिखे अनुसार संक्रान्तिसे स्वर देखकर मृत्यु ज्ञान बतलाया गया है।

मार्गशीर्ष मासकी शुक्ल प्रतिपदाके दिनसे जो उस मास का संक्रान्ति दिवस है, ५ दिन तक एकही स्वर चले तो उस

दिनसे १८ वें वर्षमें मृत्यु होती है। शरत्संक्रान्तिसे (आसोज शुक्लपक्ष प्रतिपदा सूर्योदय) लेकर जो एक ही नाडीमें ५ दिन तक पवन चले तो १५ वर्षमें मृत्यु होती है।

श्रावण महिनेकी शुरु तिथि (श्रावण शुक्ल १) से पाँच दिन तक एक स्वर चले तो १२ वर्षमें मृत्यु होती है। ज्येष्ठ शु० १ से १० दिन तक एक ही नाडीमें वायु चले तो ९ वर्षके अन्त में मृत्यु होती है।

चैत्र महिनेके पहले दिनसे ५ दिन तक एक नाडीमें वायु चले तो ६ वर्ष में मृत्यु होती है । *

उपरोक्त महिनोंमें एक ही नाडीमें २,३,४,५ दिन हवा वहे तो पाँच दिन वायु वहनेके हिसाबसे जितने वर्षोंमें मृत्यु कही है उन वर्षोंके पाँच भाग करके उतने वर्ष कम कर देने चाहिये। जैसे शरद् सक्रान्तिमें पाँच दिनकी अपेक्षा चार दिन चले तो १५ का पाँचवा हिस्सा ३ वर्ष कम करके १२ वर्ष बतलाने चाहिये। यदि ३ दिन चले तो दो भाग (तीन×दो ३×२) यानि ६ वर्ष कम करके ९ वर्ष पर्यन्त मृत्यु कहनी चाहिये। इसी तरह सबमें हिसाब लगाकर वर्ष निकालने चाहिये।

किसी आचार्यने पोषण कालसे नीचे लिखे अनुसार मृत्यु ज्ञान बतलाया है।

---

* नोट — गुजरातमें शुक्ल पक्ष से महिना गिना जाता है अतः पहला दिन शुक्ल पक्ष १ से गिनना चाहिए क्योंकि उपरोक्त सकलन गुजराती पुस्तकोंसे लिया गया है।

जन्म नक्षत्रमें चन्द्रमा हो और अपनी राशिसे सातवीं राशिमें सूय हो अर्थात् जितनी जन्म राशि चन्द्रमाने भोग ली हो उतनी ही उसस सातवीं राशि सूर्य भोग लेवे तो पोपण काल कहा जाता है जिससे मृत्युका निर्णय किया जाता है।

उस पोपण कालमें यदि आधे दिन सूर्य नाड़ीमें वायु चले तो १४ वे वर्ष मे और सारे दिन सूर्य नाड़ीमे हवा वहे तो १२ वें वर्ष में मृत्यु होती है। उसी पोषण कालमें एक रात दिन दो व तीन दिन रात सूर्य नाड़ीमें वायु चले तो क्रम से १०, ८ और ६ वर्षमें मृत्यु होती है। यदि ४ दिन उसी तरह हवा चले तो चार वर्ष में ५ दिन चले तो तीन वर्षमें। इसी तरहसे सिर्फ सूर्यनाड़ीमें ६, ७, ८, ९, १० दिन तक वायु चले तो १०८० (५ दिन चले तो १०८० दिन जीवे) में से क्रमश १, २, ३, ४, ५×२४ दिन कम कर देने चाहिये यानि २४, ४८, ७२, ९६, १२० दिन क्रमशः कम कर देने चाहिए अर्थात् ८ दिन सूर्य नाड़ीमें हवा चले तो १०५६ और ७ दिन चले तो १००८ और ८ दिन चले तो ९३६ और ९ दिन चले तो ८४० और १० दिन चले तो ७२० दिन जीवे। इसी तरहसे आगे होते चले जायगे। ११, १२, १३ १४, १५ दिन तक १ नाड़ी में से पवन चले तो क्रमश उपरोक्त ढंग से १, २, ३, ४, ५×२४ दिन ७२० में से कम कर लेने चाहिये। स्पष्ट अर्थ यह है कि ११ दिन सूर्यनाडी में वायु चले तो ६९६ दिनमें, १२ दिन चले तो ६४८ दिनमे, १३ दिन चले तो ५७६ दिनमें, १४ दिन चले तो ४८० दिन में,

१५ दिन चले तो ३६० दिन में मृत्यु होती है। इसी तरह १६, १७, १८, १९, २०, दिन पर्यंत एक नाडीमे हवा चले तो १, २, ३, ४ ५×१२ उपरोक्त ढगसे कम करने चाहिए अर्थात् १६ दिन वायु चले तो ३४८ दिन, १७ दिन चले तो ३२४ दिन, १८ दिन चल तो २८८ दिन, १९ दिन चले तो २४० दिन, २० दिन चले तो १८० दिनमें मृत्यु होती है।

२१, २२, २३, २४, २५ दिन सूर्यनाडीमें एक समान वायु चले तो १, २, ३, ४, ५×६ कम करके फल कहना चाहिये। पोषणकालमें २१ दिन सूर्यनाडीमें हवा बहे तो १७४ दिन, २२ दिन बहे तो १६२ दिन, २३ दिन बहे तो १४४ दिन, २४ दिन बहे तो १२० दिन, और २५ दिन बहे तो ९० दिन, २६ दिन बहे तो २ महिनेमें, २७ दिन बहे तो १ महिनेमें, २८ दिन चले तो १५ दिनमें, २९ दिन चले तो १० दिनमें, ३० दिन चले तो ५ दिनमें, ३१ दिन चले तो ३ दिन में, ३२ दिन चले तो २ दिन में ३३ दिन चले तो १ दिन में, मृत्यु होती है। यदि पोषणकालमें इस प्रमाणसे चन्द्रनाडीमें हवा चले तो व्याधि होती है। व्याधि शब्दमें इनका ग्रहण होता है — मित्रविनाश, महालय, प्रदेश-गमन, धनविनाश, पुत्र-नाश, राज्य-नाश, अकाल आदि।

इस प्रमाणसे शरीरमें रहने वाले चन्द्र सूर्य सम्बन्धी प्रत्येक वायुका अभ्यासकरके आयु शेषका निर्णय करना चाहिए और बाहरके लक्षणोंका ध्यान रख कर अच्छी तरह कान, मस्तिष्कके भेद से वास्तविक निर्णय देना चाहिए।

नेत्रसे आयु ज्ञान

वाम नेत्रमे सोलह पखुडी वाला चन्द्र सम्बन्धी कमल है। दाहिने नेत्रमें १२ पखुड़ी वाला सूर्य सम्बन्धी कमल है। इसको अच्छी तरहसे जानना चाहिये। अपनी अगुलीसे आँख के ऊपर नीचे दायें वायें जुगनुके समान चमकने वाली पखुडी को गुरुपदेशानुसार दबाकर देखना चाहिये चन्द्र सम्बन्धी कमलकी (वामनेत्र) चारों पखुडियोंमें से यदि नीचे वाली पखुडी न दीखे तो ६ माहमे, भ्रकुटी (ऊपरवाली) के पासवाली न दीखे तो ३ मासमे, पीछे(*Out ide*) की तरफकी पखुडी न दिखाई दे तो दो मासमें और नासिकाकी तरफ (*In side*) की पखुड़ी न दिखाई दे तो १ मासमे मृत्यु होती है। ऊपर हमने केवल वाम नत्रका फलादेश लिखा है। इसी तरह दक्षिण नेत्रको अङ्गुलीसे दवाने पर सूर्य सम्बन्धी १२ पखुडियों वाला कमल दिखाई पडेगा। इसमें भी अपनी अगुलीसे आँख के ऊपर नीचे, दाईं वाईं ओर की जुगनुके समान चमकने वाली पखुडियों को दबाकर देखना चाहिये। यदि नीचे वाली पंखुड़ी न दीखे तो १० दिनमें, ऊपरकी न दीखे तो ५ दिनमें कानके तरफकी न दिखाई दे तो ३ दिनमें, नाककी तरफ की पखुडी न दीखे तो २ दिन मे मृत्यु होती है। अगुलीसे आखों को दवानेसे यदि दोनों कमलोंकी पखुडिया दिखाई दे तो सौ दिनमें मृत्यु होती है। ✿

✿ एतान्यवीक्ष्यमानानि द्वयोरपिद्दिपद्मयो।
दलानि यदि वीक्ष्यन्ते मृत्युदिन शतात्तदा ॥

कानसे आयुका ज्ञान

हृदयमें आठ पखुडी वाले कमलका ध्यान करनेके बाद हाथोंकी तर्जनी अगुलियोंको कानोंके दोनों सुराखोंमें डालने पर जोरसे जलती हुई अग्निके समान थपथपाहट जैसी आवाज न आवे और वही आवाज ५, १०, १५, २०, २५ दिन तक सुनाई न दे तो क्रमश ५, ४, ३, २ १ वर्ष में मृत्यु होती है। यदि ६ दिन से १६ दिन तक उस तरहका शब्द न सुनाई दे तो क्रम से १, २, ३ ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६×२४ दिन ५ वर्षोंमें से कम वह जीता है अर्थात् ६ दिन तक न मालूम हो तो ५ वर्षोंके दिनोंमें से १×२४ यानि २४ दिन कम होंगे। यदि ७ दिन न मालूम पडे तो ६ दिन मालूम न पडने पर जितने दिन आयें हों उनमेंसे २×२४ (४८) कम करना चाहिए। इसी तरह १६ दिन पर्यन्त समझ लेना चाहिए अर्थात् १, २, ३, ४, ५ ×२४ आखिरके दिन आवे उसमे से कम कर लेना चाहिए।

मुखाकृतिसे आयुका ज्ञान

ब्रह्मद्वारमें फैलती हुई धूम मालिका यदि ५ दिन देखने मे न आवे तो तीन वर्षमें मृत्यु होती है। धूम मालिकाका ज्ञान गुरु गम्य है, इसलिए इसका ज्ञान विशेष ज्ञातासे ही प्राप्त करना चाहिये। काल चक्र जाननेके लिए सुदी १ के दिन पवित्र होकर अपने दाहिने हाथको 'शुक्ल पक्ष है' ऐसा समझे तथा

कनिष्ठिका अगुलीके नीचेका पेरुवों (पर्व) प्रतिपदा, बीचका षष्ठी और ऊपर वालेको एकादशी समझे। अगुठेके नीचेके पर्वको पञ्चमी बीचलेको दशमी और ऊपर वालेको पूर्णिमा तिथि समझे। इसी तरह अनामिका अगुलीके नीचेके हिस्से को द्वितीया, बीचको तृतीया, और ऊपर वालेको चतुर्थी मध्यमा अंगुलीके नीचेके भागको सप्तमी, मध्यभागको अष्टमी, ऊपर के भागको नवमी समझे। तर्जनी अगुलीके नीचेके भागको द्वादशी, मध्य को त्रयोदशी और ऊपर वालेमें चतुर्दशीकी कल्पना करनी चाहिए। इसी तरहसे बायें हाथको कृष्णपक्ष समझ कर उसकी अंगुलियोंमें तिथियोंकी कल्पना करनी चाहिए।

मनुष्यको निर्जन प्रदेशमें जाकर पद्मासन लगाकर मन से प्रसन्नता पूर्वक ध्यान करके हाथोंको कमलकी पखुड़ियोंके आकारके समान रखकर हाथके अन्दर कालेवर्णके एक बिन्दु का चिन्तन करना चाहिए।

तदन्तर हाथ खोलते समय जिस अगुलीके अन्दर कल्पनाकी हुई अन्धेरी तथा शुक्ल तिथिमें काला विन्दु दिखाई पड़े तो उसी तिथिके दिन उसकी मृत्यु होगी।

विषुवत् समय अर्थात जिस रोज दिन और रात बराबर हो उस समय जिसकी आँख फड़के तो उसकी आठ पहरमें मृत्यु होती है। इसका अर्थ कई यह भी करते हैं कि सूर्य और

चन्द्र दोनों नाड़ियाँ एक साथ चलती हो और विषुवत् कालमें आँख फड़के तो एक अर्ध रात्रिमें मृत्यु होती है। केवल वायु के विकारसे फड़के तो पूर्व लिखित दोष न होगा, स्वाभाविक फड़कनेसे ही ऐसा होगा। जलसे भरे हुए कासीके वर्तनमें सूर्यका बिम्ब यदि दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, पूर्व इन दिशाओं में खण्डित दिखाई दे तो क्रमश ६, ३, २, १ मासमें मृत्यु होती है। यदि सूर्यबिम्बके मध्यमें छिद्र दिखाई दे तो दश दिनमें और धुँएसे आच्छादित दिखाई दे तो उसी दिन मृत्यु होती है।

शुक्ल पक्षकी रात्रिमें या सुबह खड़ा होकर अपने हाथ लम्बे करके अपनी छाया देखकर, धीरे धीरे दृष्टि उठाकर आकाशमें अपनी छाया देखनेका प्रयत्न करे। उस समय बड़ा सफेद आकृति दिखलाई पड़ेगी, यदि उस आकृतिका सिर देखनेमें न आवे तो उसकी मृत्यु शीघ्र हो जाती है। यदि उसका बायाँ हाथ देखनेमें न आवे तो उसकी स्त्री या पुत्र का नाश होगा, यदि दाहिना हाथ दिखाई न दे तो भाईका नाश होगा, हृदय न दिखाई दे तो स्वयका मरण होगा, पेटका भाग न दीखे तो धन नाश, गुह्य स्थान न दीखे तो अपने पूज्य वर्ग में से किसीका नाश, यदि दोनों जघा न दिखाई पड़े तो व्याधि, पैर न दीखे तो प्रदेश गमन और यदि सारा शरीर न दिखलाई दे तो उसी समय उसकी मृत्यु हो जायेगी।

— जो व्यक्ति रोहिणी नक्षत्र, चन्द्र-लाञ्छन, छाया पथ, आकाश, ध्रुव, देवताओंका मार्ग यानि सप्तर्षि-मण्डल, माताका मण्डल

अरुन्धती, चन्द्रमा, शुक्र, अगस्त्य इनमेंसे एक को भी बहुत प्रयत्न करने पर भी नहीं देख सके तो वह वर्ष दिन (१२ मास) के अनन्तर निश्चय ही काल का ग्रास बनता है। परन्तु कई आचार्योंका मत है कि अरुन्धती जिह्वाको, ध्रुव नासिकाके अग्र भागको, विष्णुपद आँखके कोयेको (कनीनिका, मणिया-कीकी) मातृमण्डल भ्रकुटीको कहते हैं, ये चारों आयके नाश होने पर दिखाई नहीं देते। जिस मनुष्यके छींक, टट्टी, वीर्यपात व मूत्र एक साथ हो जावे तो एक वर्षके अन्तमें उसकी भी मृत्यु हो जाती है।

एक यह भी मत है कि, जो मल, मूत्र व अपानवायु एक साथ ही विसर्जन करे तो उसकी १० दिनमें मृत्यु होजाती है।

जिस व्यक्तिको सूर्य, चन्द्रके बिम्बकी किरणें न दिखाई पडे और आग निस्तेज दिखाई दे वह नर ११ मासके बाद जीवित नहीं रह सकता। जो सूर्यको बिना किरणका और अग्नि को अकिरण देखे वह भी ११ मासके बाद मर जाता है।

जिस मनुष्यको स्वप्न या जागृतावस्थामे बावडीमें मल मूत्र, स्वर्ण और चाँदी दीख पडे वह दश माससे अधिक जीवित नहीं रह सकता। जो वृक्षके अग्रभागमें गन्धर्वनगर देखे या प्रेत पिशाच देखे तो उसकी भी दश महिनेमें मृत्यु हो जायगी।

जो व्यक्ति दीपकको स्वर्ण सरीखा कान्तिमान परन्तु कभी कभी काले वर्णका देखे और सब भूतोंको अपने विपरीत देखे

वह नो माससे अधिक जीवित नहीं रह सकता।

जो मनुष्य सहसा मोटेसे पतला और पतलेसे मोटा, क्रूरसे दयावान, कृष्ण वर्णसे स्वर्णवर्ण, शूरसे डरपोक, अधार्मिकसे शान्त विचारवान हो जावे वह आठ मास जीता है। किसी किसी का विचार है कि जो मनुष्य सहसा मोटेसे पतला व पतलेसे मोटा हो जाता है वह १ ही मासमें मर जाता है।

जिसकी हथेलीमें व जिह्वाके मूलमें दर्द हो, रुधिर काला पड़ जावे तथा सूई चुभानेसे दर्द न हो वह केवल ७ मास जीवित रहता है।

जिसके मध्यकी तीन अङ्गुलियाँ मुड़े नहीं, विना रोग ही कंठमें शुष्कपना तथा पूछी हुई बातका विस्मरण हो, वह मनुष्य ६ मास जीवित रहता है। बादल रहित दिनमें अपने मुखमें पानी भर कर आकाशकी ओर फुत्कार करके ऊँचा फेंके तो उसमें इन्द्र धनुषकी सी आकृति दिखाई देगी, जिसे ऐसा न दिखाई दे उसकी भी ६ माहमें मृत्यु हो जाती है। मेघ रहित दिनमें आकाशसे नील रत्न-कान्तिवाला, टेढामेढा सूक्ष्माकृति वाला सर्प अपनी ओर आता दिखाई न दे तो उसकी भी छठे महिनेमें मृत्यु हो जाती है। मेरे अनुभवमें आया है कि हजारों मोती आकाशमें चलते दिखाई पड़ते हैं परन्तु अभी तक सर्पाकृति बहुत छोटी दिखाई देती है। दाहिने हाथ की मुट्ठी बाँधकर नाकके ठीक सीधमें कपाल पर रखकर नीचे

अरुन्धती, चन्द्रमा, शुक्र, अगस्त्य इनमेंसे एक को भी बहुत प्रयत्न करने पर भी नहीं देख सके तो वह वर्ष दिन (१२ मास) के अनन्तर निश्चय ही काल का ग्रास बनता है। परन्तु कई आचार्योंका मत है कि अरुन्धती जिह्वाको, ध्रुव नासिकाके अग्र भागको, विष्णुपद आँखके कोयेको (कनीनिका, मणिया-कीकी) मातृमण्डल भ्रुकुटीको कहते हैं, ये चारों आयुके नाश होने पर दिखाई नहीं देते। जिस मनुष्यके छींक, टट्टी, वीर्यपात व मूत्र एक साथ हो जावे तो एक वर्षके अन्तमें उसकी भी मृत्यु हो जाती है।

एक यह भी मत है कि, जो मल, मूत्र व अपानवायु एक साथ ही विसर्जन करे तो उसकी १० दिनमें मृत्यु होजाती है।

जिस व्यक्तिको सूर्य, चन्द्रके बिम्बकी किरणें न दिखाई पड़े और आग निस्तेज दिखाई दे वह नर ११ मासके बाद जीवित नहीं रह सकता। जो सूर्यको बिना किरणका और अग्नि को वकिरण देखे वह भी ११ मासके बाद मर जाता है।

जिस मनुष्यको स्वप्न या जागृतावस्थामें घावडीमें मल मूत्र, स्वर्ण और चाँदी दीख पडे वह दश माससे अधिक जीवित नहीं रह सकता। जो वृक्षके अग्रभागमें गन्धर्वनगर देखे या प्रेत पिशाच देखे तो उसकी भी दश महिनेमें मृत्यु हो जायगी।

जो व्यक्ति दीपकको स्वर्ण सरीखा कान्तिमान परन्तु कभी कभी काले वर्णका देखे और सब भूतोंको अपने विपरीत देखे

वह नो माससे अधिक जीवित नहीं रह सकता।

जो मनुष्य सहसा मोटेसे पतला और पतलेसे मोटा, क्रूरसे दयावान, कृष्ण वर्णसे स्वर्णवर्ण, शूरसे डरपोक, अधार्मिकसे शान्त विचारवान हो जावे वह आठ मास जीता है। किसी किसी का विचार है कि जो मनुष्य सहसा मोटेसे पतला व पतलेसे मोटा हो जाता है वह १ ही मासमें मर जाता है।

जिसकी हथेलीमें व जिह्वाके मूलमें दर्द हो, रुधिर काला पड़ जावे तथा सूई चुभानेसे दर्द न हो वह केवल ७ मास जीवित रहता है।

जिसके मध्यकी तीन अङ्गुलियाँ मुड़े नहीं, बिना रोग ही कंठमें शुष्कपना तथा पूछी हुई बातका विस्मरण हो, वह मनुष्य ६ मास जीवित रहता है। बादल रहित दिनमें अपने मुखमें पानी भर कर आकाशकी ओर फुत्कार करके ऊँचा फेंके तो उसमें इन्द्र धनुषकी सी आकृति दिखाई देगी, जिसे ऐसा न दिखाई दे उसकी भी ६ माहमें मृत्यु हो जाती है। मेघ रहित दिनमें आकाशसे नील रत्न-कान्तिवाला, टेढामेढा सूक्ष्माकृति वाला सर्प अपनी ओर आता दिखाई न दे तो उसकी भी छठे महिनेमें मृत्यु हो जाती है। मेरे अनुभवमें आया है कि हजारों मोती आकाशमें चलते दिखाई पड़ते हैं परन्तु अभी तक सर्पाकृति बहुत छोटी दिखाई देती है। दाहिने हाथ की मुट्ठी बाँधकर नाकके ठीक सीधमें कपाल पर रखकर नीचे

की ओर उसी हाथकी कोहनी तक देखनेसे हाथ बहुत ही पतला दिखाई देता है; जिस दिन हाथकी कलाई दिखाई न पडे और मुट्ठी हाथसे अलग प्रतीत होवे उस दिनसे ६ मास बाद उसकी भी मृत्यु हो जाती है।

जिसके स्तनोंकी त्वचा शून्य हो जावे तो वह निश्चय ही पाँच महिनेमें मर जाता है।

विषयसेवनके उपरान्त अकस्मात् शरीरमे से घटाके नाद जैसा शब्द यदि सुनाई पडे तो पाँच महिनेमे उसकी भी मृत्यु हो जाती है।

यदि किसीके सिरपर वेगसे गिरगिट (किरकाँटिया) चढ़कर चला जावे और जाते समय अपने शरीरसे तीन प्रकार से चेष्टा करे तो उसकी भी पाँच महिने बाद मृत्यु होजाती है।

जिसकी आँखोंकी ज्योतिमें प्रकाश न हो, दोनों नेत्रोंमें पीड़ा रहे, वह मानव केवल ४ मास जीवित रहता है। जिस नर की नाक बाकी, आँख गोल और कान अपनी जगहसे शिथिल पड़ जावे वह भी चार महिनेके बाद मर जाता है।

स्नानके बाद जिसके हृदय, कपाल और पैर सूख जाय वह तीन मासमें मर जाता है। शिव-स्वरोदय में कपालकी अपेक्षा हाथ लिखकर बताया है कि वह दश दिन तक जीवित रहता है। परन्तु योग शास्त्र भाषान्तर के १६५ वें श्लोकमें लिखा है कि हृदय और पैर स्नानके बाद तुरन्त सूख जावे

तो ६ दिनमें ही मृत्यु हो जाती है। इस विषयमें इस विषयके पूर्ण ज्ञानी व योगियोंसे ही पता लगाना चाहिए। जिसके दांत तथा अण्डकोष दबानेसे भी पीड़ित न हो अर्थात् शून्य हो जावे वह तीन मासमें मर जाता है।

वह मानव केवल दो मास जीवित रहता है जो तारोंको उनके वास्तविक रूपमें न देखे और रातमें इन्द्र धनुष देखे। जमीनमें छिद्र, जीभको काली, मुखको लाल कमल समान, तालु कम्पाय मान, मनमें शोक, शरीरमें अनेक प्रकारके वर्ण और नाभि अकस्मात् ऊँची उठ आवे तो दो महिनेमें उसका भी मरण हो जाता है।

पाद तथा घुटनोंमें जिसको स्पर्शका ज्ञान भी न हो उस नरकी १ मासमें मृत्यु होजाती है। जीभ स्वादको न जान सके, भाषणमें बार बार स्वर कम्पन हो, कानोंसे सुनाई न दे, नाक गन्ध न जाने, नेत्र सदा फड़के, देखी हुई वस्तुमें भ्रम होवे दर्पण या पानीमें अपनी आकृति न दिखाई दे, बादल बिना बिजली दिखाई पडे, कारण बिना ही मस्तक जला करे, हँस, काग और मोरमें से कोई भी मैथुन करते दिखाई पडे तो उस मनुष्यकी भी एक मासमें मत्यु हो जाती है।

जिसकी कनिष्ठिका (सबसे छोटी) अंगुली अथवा मध्यमा अंगुली काली हो जावे वह १८ दिन जीवित रहता है।

जो अपने शरीरको घी, तेल तथा दर्पणमें सिर-हीन देखे वह १५ दिन जीवित रहता है। जिसको सूर्यमें ठण्ड, चन्द्रसे गर्मी प्रतीत होवे और शीतल गर्मकी पहिचान न रहे वह १५ दिन तक जीवित रहता है। जिस व्यक्तिका सूर्य-स्वर नियमित रूपसे १६ दिन तक चले वह १५ दिनमें कालका ग्रास होता है।

आँखोंके कोनोंको अङ्गुलियोंसे कुछ दबाके देखे, यदि दबानेसे आँखोंमें जल बिन्दु न आवे तो १० दिनमें मरण होता है।

जिस मनुष्यके फुत्कारके साथ श्वास बाहर गर्म मालूम पड़े हिलने फिरनेकी शक्ति कमजोर हो जावे और शरीरके पाचों अग ठंड हो जावे तो उसकी १० दिनमें मृत्यु हो जाती है। आधा शरीर ठंडा और आधा गर्म हो जावे, अकारण ही ज्वाला जले तो सात दिनमें ही उसका मरण हो जाता है।

आँख बन्द करके अङ्गुलीसे आँखका एक किनारा दबाने से आँखके भीतर एक चमकता हुआ तारा दिखाई देगा, जिस दिन यह तारा न दिखाई दे उसकी भी उस दिनसे दश दिनमें मृत्यु हो जायेगी। केवल इड़ा और पिंगलामें ही वायु चले तो उसकी भी दश दिनमें मृत्यु हो जावेगी और अगर अकेली सुषुम्ना नाड़ीमें लम्बे वक्त तक वायु चले तो मरण शीघ्र होता है। भ्रुकुटी न दीखे तो नौ दिन, कानोंके अन्दरका शब्द न

आपत्ति, रोग-परिज्ञान और उनका उपचार

यह पहले बताया जा चुका है कि किस समय, किस तिथिको कौनसा स्वर चलना चाहिए जब कभी कोई रोग या आपत्ति आती है तो विशेष रूपसे सूर्योदय तिथिसे उल्टा स्वर वहने लगता है और गौणरूपसे दिन और रातमें भी दाहिना बाया स्वर ज्यादा या कम चला करता है अत जब कभी सूर्योदय तिथिके विरुद्ध स्वर चले तो उसी समयसे एक घण्टे तक शुद्ध हवामें ॐ मन्त्रका जप करे, ऐसा करनेसे जो प्राण ठीक नहीं चल रहा है वह नियमानुसार चलने लगेगा। ॐ मन्त्रसे प्राण शुद्ध होनेका विवेचन पूर्ण रूपसे ऊपर किया जा चुका है। जिस समय बीमारी आवे उस समय जो स्वर चल रहा हो उसको उस समय व उतने दिन तक बन्द रखना चाहिए जब तक कि बीमारी ठीक न हो जावे। ऐसा करनेसे उसका प्रभाव नष्ट हो जावेगा और बीमारी शान्त हो जावेगी। इस तरह दुष्प्रभाव पैदा करने वाली औषधि सेवनसे बच जावेंगे।

यदि शुक्ल पक्षकी प्रतिपदाको बाया स्वर न चलकर दाहिना स्वर चले तो पूर्णिमा तक कोई न कोई रोग, कलह या हानि अवश्य होगी। इसी तरह कृष्ण पक्षकी प्रतिपदाको दक्षिण स्वर न चलकर चन्द्र स्वर चले तो अमावस्या तक सर्दीसे रोग या हानि आदिसे कष्टोंकी सम्भावना है।

इसी प्रकार लगातार दो पक्ष तक यदि उल्टे स्वर चलें तो अपने पर आपत्ति हानि या प्रियजनकी भयंकर बीमारी या मृत्यु की सम्भावना रहती है। यदि तीन पक्ष तक लगातार ऐसा होता रहे तो अपनी मृत्यु निकट होती है और यदि तीन दिन ऐसा हो तो कलह या रोगकी सम्भावना होती है। यदि लगातार १ मास तक वाम स्वर विपरीत चले तो महारोगकी सम्भावना होती है और यदि स्वरके समयका परिवर्तन अर्थात् घटाबढी हो तो निम्नलिखित शुभा शुभ फल होते हैं। देखिये —

शुभ फल

१ चन्द्रस्वर लगातार ४ घड़ी चले तो किसी अचिन्त्य वस्तुकी प्रा
२ ,, ,, ८ घड़ी ,, ,, सुखादिकी प्राप्ति
३ ,, ,, १४ घड़ी ,, ,, प्रेम, मैत्री आदिकी प्रा
४ ,, ,, १ अहोरात्र ,, ,, ऐश्वर्य, वैभव आदिकी प्रा
५ ,, ,, २ दिन तक आधे आधे प्रहर दोनों स
चलते रहें तो यश और सौभाग्यकी वृद्धि

६ यदि चार, आठ, बारह, बीस दिन तक रात दिन यदि च स्वर चलता रहे तो दीर्घायु और ऐश्वर्यकी प्राप्ति।

७ यदि दिनमें चन्द्र और रातमें सूर्यस्वर चले तो १२० व आयु होती है।

अशुभ फल

१ यदि चन्द्रस्वर लगातार १० घडी चले तो शारिरिक

होता है।

२ ,,	,,	,,	१२ ,,	,,	,,	अनेक शत्रु पैदा होते हैं।
३ ,,	,,	,,	३,२ दिन ,,		,,	रोग होते हैं।
४ ,,	,,	,,	५ दिन ,		,	उद्वेग पैदा होता है।
५ ,,	,,	,,	१ मास ,,		,,	धनका नाश होता है।

१ यदि सूर्यस्वर लगातार			४ घड़ी तक	चलता रहे तो		बिगाड़ या वस्तु हानि होती है।
२ ,,	,,	,,	२ ,,	,,	,,	सज्जनसे द्वेष होता है
३ ,,	,,	,,	२१ ,,	,	,,	सज्जन विनाश होता है
४ ,,	,,	,,	रात दिन तो			आयु क्षीण और मृत्यु होती है

शिवस्वरोदयके ८२, ८३, ८४ वे श्लोकमें हमेशा विपरीत स्वरके लक्षण दिये हैं, यदि प्रात कालसे स्वरोंका विपरीत उदय हो तो पहले समयमें मनका उद्वेग, दूसरे में मनकी हानि, तीसरेमें बहिर्गमन, चौथेमें इष्ट-वस्तु-नाश, पाँचवेमें राज विध्वंस, छठेमें सम्पूर्ण द्रव्य नाश, सातवेंमें बीमारीका दु ख और आठवेंमें मृत्यु होती है। यदि आठ दिन तक प्रात मध्याह्न व सायंस्वर विपरीत चले तो हानि होती है। परन्तु थोड़ा कमवेस चले तो शुभ फल होता है।

रोग और उसका प्रतिकार

बुखारः—जब शरीरमें हरारत प्रतीत हो तो जो स्वर चलता

हो उसे उतने ही दिन बन्द रखे जितने दिन तक शरीर पूर्ण स्वस्थ न हो जाय। इसके लिये नथुनेमें नरम रुई रख देनेसे अभीष्ट स्वर बन्द किया जा सकता है।

स्वर-ज्ञानसे वैद्यको दोषकी पहिचान

रोगीको सीधा सुलाकर उसकी नासिकाके पास दोनों अङ्गुलियोंमे जाँच करो यदि चन्द्रस्वर हो और तिथि चन्द्रकी न हो तो कफ दोषकी बीमारी है व कफकी नाड़ी दिखाई देगी। यदि सूर्यस्वर हो और तिथि उल्टी हो अर्थात् तिथि सूर्यस्वरकी न हो तो पित्त दोष। वातादि दोषोंमें सुषुम्नाकी चाल मालूम पढेगी। द्वन्दज दोषोंमें जिस द्वेषकी अधिकता होगी उस नाड़ी का स्वर तेज चलेगा और दूसरी नाडी कम चलेगी इससे वैद्य सहज ही में व्याधि निदान कर सकते हैं।

सिर दर्द —मालूम होते ही सीधा लेटकर दोनों हाथों को नीचेकी ओर लम्बा फैलादे और फिर किसीसे दोनों हाथों की कोहनियोंको रस्सीके द्वारा जोरसे बन्धवाले, ऐसा करनेसे ५-७ मिनटमें तमाम दर्द शान्त हो जायेगा। दर्द मिटने पर रस्सी खोल दे। विस्तर छोड़ते ही नासा-पुटसे सिरदर्द रोगीको शीतल जल पीना चाहिए। उसका तरीका यह है कि एक वर्तन में ठण्डा जल भर कर उसमें नाक डुबाकर धीरे धीरे जल खींचना चाहिए।

यदि आधा शीशी (अर्धकपाली) हो तो जिस ओरका

सिर दर्द करता हो तो केवल उसी तरफका हाथ बाँधना चाहिए। यदि अगले दिन फिर सिर-दर्द रहे और पहले दिन जो स्वर चल रहा था वही दूसरे दिन होवे तो हाथ बांधनेके साथ साथ वह स्वर भी बन्द कर देना चाहिए।

अजीर्ण—जिन्हें निरन्तर अजीर्ण रहता हो वे हमेशा दक्षिण स्वरकी उपस्थितिमें भोजन करें। ऐसा करनेसे धीरे धीरे पहलेका अजीर्ण मिटकर पाचन शक्ति बढ़ेगी और अन्न पचेगा। भोजनके उपरान्त १५-२० मिनिट तक बाईं करवट लेटनेसे विशेष और चमत्कारिक लाभ होगा। पुराना अजीर्ण मिटानेका उपाय यह है कि हमेशा १५-२० मिनिट पद्मासन लगाकर नाभि पर दृष्टि स्थिर करे ऐसा करनेसे १ सप्ताहके अन्दर ही सब शिकायत दूर हो जावेगी।

हिलते दाँत बन्द करना—जिनके दाँत हिलते या दुखते रहते हों वे शौच तथा पेशाबके समय अपने दाँतोंको जोरसे दबा रक्खें, ऐसा करनेसे दाँतोंकी शिकायत जाती रहेगी।

अन्य दर्द—छाती, पीठ, कमर, पेट आदि कहीं पर भी एक दम दर्द उठने पर जो स्वर चलता हो उसे अच्छी तरह बन्द करदेनेसे कैसा ही दर्द क्यों न हो तुरन्त शान्त होजायगा।

दमा—जब दमेका दौरा आरम्भ हो व श्वास फूलने लगे तो उस समय जो स्वर चलता हो उसे एक दम बन्द कर

देना चाहिए। १५-२० मिनिटमें ही इससे आराम मिलजावेगा। यदि इस रोगको समूल नष्ट करना हो तो निरन्तर एक मास तक चलते हुए स्वरको बन्द करके दूसरे स्वरको चलानेका अभ्यास करना चाहिए। इस रोगमें जितना ही स्वर बदलनेका अभ्यास किया जावेगा उतना ही अधिक और शीघ्र लाभ होगा। स्वर परिवर्तनके विषयमें कइयोंका तो यहाँ तक मत है कि यदि किसीने भूलसे विष खालिया हो और अगर वह चन्द्र स्वर या जलतत्त्व चला दे तो जहर का कुछ भी प्रभाव नहीं होगा।

अन्य उपयोगी उपचार

परिश्रमसे उत्पन्न थकावटको दूर करने और धूपकी गर्मीसे शान्त होनेके लिए कुछ समय दाहिनी करवट लेटनेसे थकावट—गर्मी दूर हो जाती है क्योंकि लेटनेसे सूर्यस्वर (गर्म नाड़ी) बन्द होकर चन्द्रस्वर (ठण्डी नाड़ी) चलनेका अवसर मिलता है।

नित्य भोजनोपरान्त लकड़ीकी कघीसे बाल सँवारनेसे सिरके रोग नाश होते हैं और बाल सफेद नहीं होते।

नित्य प्रातःकाल आधा घण्टा पद्मासनसे बैठ कर दाँतों की जड़में जीभका अग्रभाग जमाये रखनेसे कोई भी रोग नहीं होता।

नित्य आधा घण्टा सिद्धासनसे बैठकर नाभि पर दृष्टि

जमानेसे स्वप्नदोष सर्वथा नष्ट हो जाता है। निरन्तर ६ मास करने पर भयकरसे भयकर स्वप्नदोष भी बिना औषधिके ठीक हो जाता है।

सुबह आँख खुलते ही जिस तरफका स्वर चल रहा हो उस ओर की हथेली मुँहपर फेरकर उसी ओरका पैर प्रथम जमीन पर रखनेसे इच्छानुसार सिद्धि होती है।

जिन्हें विशेष अजीर्ण रहता हो, वे प्रातः भोजनसे पूर्व सूर्यस्वरमें पानके पत्तेमें १० तक काली मिर्चें चबाकर खावें और इस तरह १५-२० रोज करनेसे भयकर अजीर्ण भी दूर हो जाता है।

खून साफ करनेकी विधि

यदि किसी कारण खून बिगड़ गया हो और शरीरमें रक्त-विकारसे फोड़े फुन्सी होते हों तो कुछ दिन नियमपूर्वक शीतली कुम्भक करनेसे रक्त साफ होकर चर्म रोग बिलकुल मिट जायेंगे। शीतली कुम्भकका उपाय यह है कि प्रात या सायं स्वच्छ वायुमें सूर्यके सामने सीधे खड़े होकर मुँहको थोड़ा खोलकर जीभको थोड़ी बाहर निकाल कर गहरा श्वास अन्दर लेजाय और प्रश्वास नाकसे निकाले और इसी प्रकार ५-७ मिनिट तक करे।

यौवन स्थिरीकरणउपाय

इसके लिए इच्छानुसार स्वर बदलनेका अभ्यास करना

चाहिए। दिनमें जब भी समय मिले तो जो स्वर चल रहा हो उसे फोरन बदलनेका प्रयत्न करे। इस प्रकार दिनमे कई बार स्वर परिवर्त्तन करनेसे चिर यौवन प्राप्त होता है, इस क्रियाके साथ साथ यदि प्रात सार्थी *मुद्रा भी की जावे तो अकथनीय लाभ होता है।

स्वर साधनके लिए प्रात कालका समय सबसे श्रेष्ठ माना गया है। यदि सूर्योदयके समय स्वर नियमविरुद्ध चले तो उपरोक्त सारी बिमारिया, जिनका उल्लेख इस अध्यायमें पहले हो चुका है, जरूर होती हैं। मैंने अपने सूक्ष्म अनुभवसे रोग निराकरणके उपाय स्वरसे ही निकालकर अनेक बीमारियों को दमन करनेमें सफलता प्राप्त की है। जिस बीमारीमें पूरे श्वास भरने व छोड़नेसे नुकसान न हो तो श्वास निकालते समय पेटको इतना सिकोड़ना चाहिए कि वह रीढकी हड्डीसे चिपक जाय और फुलाते समय इतना फुलाया जावे कि वह आगे आ जावे इससे उस बीमारीका नाश अवश्यम्भावी है।

बीमारी की पहिचान

दोनों स्वर थोडी देर चलाकर परीक्षा करलेनी चाहिए और जिसमें अधिक शान्ति मिले उस स्वरको चलानेसे अधिक आराम मिलेगा, बीमारी नाश होगी। यदि बायें स्वरसे शान्ति

* विपरीत करणी मुद्रा

मिलता है तो गर्मीसे हुई उत्पन्न बीमारी समझो । और दक्षिण स्वरसे शान्ति मिलती है तो सर्दीसे उत्पन्न बीमारी समझनी चाहिए ।

किसी स्वर ज्ञानीका मत है कि रोगीको जिस स्वरमे कष्ट हो, अपने उस स्वरको चलाकर शुद्धहो जाने पर काच या मिट्टीके बर्तनमें स्वच्छ जलसे नाकसे ६ इच दूर रखकर उसमें सात बार स्वरका समन्वय करे परन्तु गिलास नाककी सीधमें रखे जिससे श्वास वहाँ तक पहुच सके और जल पर अपना प्रभाव डाल सके ६ इञ्च दूर रखनेका कारण यह है कि यदि कोई नाकसे बीमारी निकले तो वहाँ तक जाते जाते शुद्ध हो जावे । इस पानीको दो दो घण्टेसे आध आध छटॉक १२ घण्टे तक बीमारको पिलावे, तो वह ठीक हो जावेगा । बादमें दूसरा पानी तैयार करे । यदि रोगी दूर हो तो फुलालेनके कपडेको इक्कीस बार स्वरसे मन्त्रित करके उसके पीडित अङ्ग पर रखनेके लिये भेजना चाहिए । यह कपड़ा दो सप्ताह तक काम आसकता है । स्याहीचटको भी मन्त्रित करके भेजा जा सकता है । बच्चोंके लिए तावीज या रक्षासूत्र मन्त्रित किये जा सकते हैं और इसी तरह औपधियाँ भी ।

पुरानी रूईकी गोली बनाकर नाकमें डाट कर रातको सूर्यस्वर और दिनको चन्द्रस्वर चलावे, यदि कोई २० वप तक इसीप्रकार स्वर चलावे तो फिर किसी प्रकारका विकार न होगा ।

स्वप्नदोप —यह रोग आजकल ९९९ प्रति सहस्र मनुष्यों

में पाया जाता है। इसके निवारणकेलिए नीचे लिखा अभ्यास करना चाहिये। वीर्य व मूत्र निर्गत होते समय गुदा द्वारकी सकोचन व प्रसरणक्रिया होती है। लिंगमें गति देखकर जैसे जैसे गुदा द्वार सकुचित होगा वैसे ही लिंगमें अधिकाधिक गति आवेगी और उसमेंसे वीर्य तथा मूत्र गिरने न पावेगा। मूत्र विसर्जनके समय गुदा सकुचित करनेसे मूत्र एकदम बन्द हो जावेगा अत यदि गुदा द्वारकी संकोचन प्रसरण की गति अपने वशमें रहे तो वीर्य स्तम्भन या वीर्य–पातकी गतिको अपने वशमें रखनेके लिए कुछ भी देर नहीं लगेगी।

सिद्धासन—गुदा द्वार और अण्डकोषके बीचमें बायें पैर की एड़ी लगाओ, दाहिने पैरकी एड़ी मूत्र नली की जड़ में ऊपरसे लगाओ, (शुरुमें तकलीफ होगी) थोथके बीच में तकिया रक्खो। आसन पूर्ण जमने पर दोनों पैरोंके मणिबन्धन मिल जावेंगे। जिस नथुनेसे श्वास निकलता हो उससे श्वास भीतर खींचो और गुदा द्वारको सकुचित करो, क्योंकि उस समय ढीला करनेकी इच्छा हो जाती है। थोड़े से प्रयत्नसे सफलता मिलेगी। दोनों नथुनोंको बन्द रक्खो। पेटके भीतरका श्वास बाहर न निकालो। पेटमें गति दो, अर्थात् मूत्र नलीके द्वारा कोई पदार्थ पम्पकी तरह पेट से खींच रहे हो ऐसा उपाय करो। इस प्रकार पेट छोटा बड़ा करो। यह काम तब तक करो जब तक श्वास भीतर रहे। श्वास निकालते समय पेटकी गति बन्द करदो। गुदा द्वार पहलेकी तरह ही सकुचित रक्खो। पेटमें गति देते समय भी गुदा सकुचित

मिलती है तो गर्मीसे हुई उत्पन्न बीमारी समझो । और दक्षिण स्वरसे शान्ति मिलती है तो सर्दीसे उत्पन्न बीमारी समझनी चाहिए ।

किसी स्वर ज्ञानीका मत है कि रोगीको जिस स्वरमे कष्ट हो, अपने उस स्वरको चलाकर शुद्धहो जाने पर काच या मिट्टीके वर्तनमें स्वच्छ जलसे नाकसे ६ इंच दूर रखकर उसमें सात बार स्वरका समन्वय करे परन्तु गिलास नाककी सीधमें रखे जिससे श्वास वहाँ तक पहुंच सके और जल पर अपना प्रभाव डाल सके ६ इञ्च दूर रखनेका कारण यह है कि यदि कोई नाकसे बीमारी निकले तो वहाँ तक जाते जाते शुद्ध हो जावे । इस पानीको दो दो घण्टेसे आध आध छटाँक १२ घण्टे तक बीमारको पिलावे, तो वह ठीक हो जावेगा । बादमें दूसरा पानी तैयार करे । यदि रोगी दूर हो तो फुलालेनके कपडेको इक्कीस बार स्वरसे मन्त्रित करके उसके पीडित अङ्ग पर रखनेके लिये भेजना चाहिए । यह कपड़ा दो सप्ताह तक काम आसकता है । स्याहीचटको भी मन्त्रित करके भेजा जा सकता है । बच्चोंके लिए तावीज या रक्षासूत्र मन्त्रित किये जा सकते हैं और इसी तरह औषधिया भी ।

पुरानी रूईकी गोली बनाकर नाकमें डाट कर रातको सूर्यस्वर और दिनको चन्द्रस्वर चलावे, यदि कोई २० वर्ष तक इसीप्रकार स्वर चलावे तो फिर किसी प्रकारका विकार न होगा ।

स्वप्नदोष—यह रोग आजकल ६६६ प्रति सहस्र मनुष्यों

में पाया जाता है। इसके निवारणकेलिए नीचे लिखा अभ्यास करना चाहिये। वीर्य व मूत्र निर्गत होते समय गुदा द्वारकी सकोचन व प्रसरणक्रिया होती है। लिंगमें गति देखकर जैसे जैसे गुदा द्वार सकुचित होगा वैसे ही लिंगमें अधिकाधिक गति आवेगी और उसमेसे वीर्य तथा मूत्र गिरने न पावेगा। मूत्र विसर्जनके समय गुदा सकुचित करनेस मूत्र एकदम बन्द हो जावेगा अत यदि गुदा द्वारकी सकोचन प्रसरण की गति अपने वशमें रहे तो वीर्य स्तम्भन या वीर्य-पातकी गतिको अपने वशमें रखनेके लिए कुछ भी देर नहीं लगेगी।

सिद्धासन—गुदा द्वार और अण्डकोषके बीचमें बायें पैर की एडी लगाओ दाहिने पैरकी एडी मूत्र नली की जड़ में ऊपरसे लगाओ, (शुरुमें तकलीफ होगी) थोथके बीच में तकिया रक्खो। आसन पूर्ण जमने पर दोनों पैरोंके मणिबन्धन मिल जावेंगे। जिस नथुनेसे श्वास निकलता हो उससे श्वास भीतर खींचो और गुदा द्वारको संकुचित करो, क्योंकि उस समय ढीला करनेकी इच्छा हो जाती है। थोड़े से प्रयत्नसे सफलता मिलेगी। दोनों नथुनोंको बन्द रक्खो। पेटके भीतरका श्वास बाहर न निकालो। पेटमें गति दो, अर्थात् मूत्र नलीके द्वारा कोई पदार्थ पम्पकी तरह पेट से खींच रहे हो ऐसा उपाय करो। इस प्रकार पेट छोटा बड़ा करो। यह काम तब तक करो जब तक श्वास भीतर रहे। श्वास निकालते समय पेटकी गति बन्द करदो। गुदा द्वार पहलेकी तरह ही सकुचित रक्खो। पेटमें गति देते समय भी गुदा सकुचित

ही रहे। दूसरे नथुनेसे श्वास धीरे धीरे बाहर छोडो। पहले मासमें तीन प्राणायाम, फिर १५ तक करो। इससे वीर्य स्तभनकी इतनी शक्ति बढेगी कि सारी रात समागम करने पर भी इच्छानुसार ही वीर्य-पात होगा। गुदाद्वार वशमे होनेसे स्वप्नदोष भी न होगा।

प्राणायाम करते समयमे जबरन श्वास पेटमें रखने की आदत न डालो, किसी प्रकारकी जल्दी न करो। प्राणायाम शुद्ध हवामें करो और जोरसे बहती हुई हवाको पीठ देकर धीरे धीरे श्वास लो जिससे कीडे मच्छर आदि श्वासके साथ न जावें। पेटकी नसोंमे यदि दर्द हो तो घी की मालिस करो। स्त्री प्रसग एक या दो वार ही एक मासमें करो। स्वप्नदोष के निवारणके विषयमें एक उपाय यह है कि टट्टीसे पहले मूत्रेन्द्रिय पर धीरे धीरे शीतल जलकी धारा छोड़ो और गुद्-द्वारको सकुचित रक्खो। पाच-छ मिनिट बाद मल त्याग करो। बादमें तीन मिनिट तक उपरोक्त क्रिया फिर करो।

आँख की ज्योति बढानेका योग

टट्टी जानेके बाद व भोजनके पश्चात् मुँहमें खूब पानी भरलो, फिर हथेलीमें ठण्डा जल भर कर खुली हुई आँखों पर छिड़को। पाँच सात वार ऐसा करनेसे बहुत लाभ होगा।

दिनमे चन्द्र और रातमें सूर्यस्वरकी आवश्यकता

दिनमें चन्द्रस्वर और रातमे सूर्यस्वर क्यों चलाना चाहिए, इसका कारण यह है कि दिन गर्म होने से उसमें चन्द्र

स्वर की जरूरत है, क्योंकि यह शीतल होता है। और रातमें उष्ण अग्नि सूर्यस्वर चलानेकी आवश्यकता है, इससे शारीरिक स्वस्थता बनी रहेगी। यह हर ऋतु और हर प्रदेश मे ऐसा ही देखनेमें आया है। वह पुरुष उत्तम योगी है जो दिन भर सूर्य-स्वर बन्द करके चन्द्रस्वर और रातको चन्द्रस्वर बन्द करके सूर्यस्वर चलाता है। इससे शरीर का पोषण तथा वृद्धि होती है। ऐसे सम अभ्यस्त योगीक मस्तिष्कमें चन्द्रमा अमृत गिराता है। इस प्रकार सम स्वराभ्यासी जनको तो कोई रोग नहीं होता है और उसकेलिये सुख दुःख, मानापमान, आशा निराशा, मित्रता शत्रुता, क्रोधाक्रोध सासारिक सम्बन्ध एक जैसा है। साराश यह है कि इस योगिक क्रियासे वह भविष्यवक्ता एवं अद्वैतवादी होकर सच्चिदानन्दका भान करता हुआ मोक्षाधिकारी हो जाता है और ससारमें रहने वाले ऐसे पुरुष ही पूर्ण योगी कहे जानेके अधिकारी होते हैं।

दीर्घायु

प्राणायाम द्वारा जितने श्वास कम लिए जायगे अर्थात् जितनी देर श्वास अन्दर व बाहर रोका जावेगा उतनी ही उस मनुष्य की आयु बढेगी। उदाहरणार्थ- एक पुरुष १५ बार प्राणायाम करता है, उसमें दो मिनिट प्राण को रोकता है। इस तरह तीस मिनिटमे १५ बार श्वास लेता है और एक मिनिटमें १५ बार श्वास लेने माने गये हैं, इस तरह से उसने २६ मिनिट अपनी आयुमें वृद्धि की। परिणाम यह निकला कि हर मानव प्राणायाम द्वारा उम्र बढा सकता है।

ही रहे। दूसरे नथुनेसे श्वास धीरे धीरे बाहर छोडो। पहले मासमे तीन प्राणायाम, फिर १५ तक करो। इससे वीर्य स्तम्भनकी इतनी शक्ति बढेगी कि सारी रात समागम करने पर भी इच्छा नुसार ही वीर्य-पात होगा। गुदाद्वार वशमे होनेसे स्वप्नदोष भी न होगा ।

सखेद यह लिखना पड़ता है कि मेरे वहां न पहुँचनेके कारण उसकी मृत्यु होगई। तबसे मेरे में यह विश्वास घर लाकर गया है कि प्रात काल विरुद्धस्वर चलने और प्रियजनकी बीमारीका समाचार मिलते ही जाकर उपाय करना चाहिए। मुझे पूर्ण आत्म विश्वास है कि मैं यदि बीमारके पास उसकी चिकित्सा करता तो वह कभी अकालमृत्युका ग्रास न बनता।

आत्मशक्ति भी एक वस्तुविशेष है, किसीमें यह ईश्वर प्रदत्त और किसीमें स्वय निर्मित हुआ करती है। आत्म-शक्ति या दृढआत्मा ईश्वरका एक अभिन्न अङ्ग है। संसार की सारी वस्तुएँ हमसे प्राप्त या अनुभूतकी जा सकती हैं। इसके वास्तविक सामर्थ्यको जगाकर अनेक प्रकारकी बीमारिया और मृत्यु टाली जा सकती हैं। इस शक्तिके बहुत कम ज्ञाता होने और जनतामें इसके प्रति अधिक जिज्ञासा न होनेके कारण यह बहुत समयसे अनेक बीमारियोंसे आक्रान्त हो रही है। क्या ही अच्छा होता कि प्रत्येक भारतवासी अपनी इस गुह्यशक्तिको पहिचानकर निरोग रहता।

दिन में जब कभी समय मिले तो इच्छानुसार स्वर परिवर्त्तन करना चाहिये, क्योंकि इससे चिरयौवन प्राप्त होता है।

यदि शरीरमें किसी तरह की हरारत हो और उससे बीमारी होने की आशका हो तो उस समय जो स्वर चल रहा हो उस स्वरको ऊपर वर्णित ढग से तबतक रोके रहो, जबतक वह हरारत न हट जावे। इस सहज-गम्य उपायसे विना, किसी औषधिसेवनके हम इच्छानुसार स्वास्थ्य प्राप्त कर सकते हैं।

यदि किसी दिन सुबह ही स्वर उल्टा चले और तत्काल ही प्रियजनकी बीमारीकी खबर मिले तो उसके जीवन को खतरा समझना चाहिये। शीघ्र बीमारके पास पहुच कर स्वर योगानुसार औषधिसे बीमारीको दूर करना चाहिए। इस सम्बन्धमें मैं अपना अनुभव नीचे लिखता हूँ— एक बार डूगरगढ में रहते समय विपरीत स्वर चलनेपर मेरे कनिष्ट भ्राता सूरजमलकी बीमारीका समाचार मिला, मैंने तत्काल उसकेपास सरदारशहर पहुँच कर दाहिने स्वरमें औषधिसेवन कराई और मत्र चिकित्साका उपचार किया, जिससे उसको तत्काल लाभ हुआ। इस सिद्धान्तके विपरीत चलनेपर मुझे जीवनमे एक महान् धोखा हुआ। एक दिन अचानक ही प्रात काल मेरे लघुभ्राताके पुत्र कीर्ति को बिमारीका समाचार मिला, मैं राज्य-कार्यो में व्यस्त और बचा समझकर लापरवाहीसे न जा सका। परन्तु

सखेद यह लिखना पड़ता है कि मेरे वहा न पहुँचनेके कारण उसकी मृत्यु होगई। तबसे मेरे में यह विश्वास घरसाकर गया है कि प्रात काल विरुद्धस्वर चलने और प्रियजनकी बीमारीका समाचार मिलते ही जाकर उपाय करना चाहिए। मुझे पूर्ण आत्म विश्वास है कि मैं यदि बीमारके पास उसकी चिकित्सा करता तो वह कभी अकालमृत्युका ग्रास न बनता।

आत्मशक्ति भी एक वस्तुविशेष है, किसीमें यह ईश्वर प्रदत्त और किसीमें स्वय निर्मित हुआ करती है। आत्म-शक्ति या दृढआत्मा ईश्वरका एक अभिन्न अङ्ग है। ससार की सारी वस्तुएँ इसमें प्राप्त या अनुभूतकी जा सकती हैं। इसके वास्तविक सामर्थ्यको जगाकर अनेक प्रकारकी बीमारिया और मृत्यु टाली जा सकती हैं। इस शक्तिके बहुत कम ज्ञाता होने और जनतामें इसके प्रति अधिक जिज्ञासा न होनेके कारण वह बहुत समयसे अनेक बीमारियोंसे आक्रान्त हो रही है। क्या ही अच्छा होता कि प्रत्येक भारतवासी अपनी इस गुप्तशक्तिको पहिचानकर निरोग रहता।

त्रयोदश प्रकाश

स्वर सहायतासे प्रश्नोका उत्तर

प्रश्नोत्तरी

(१)—इस विश्वमें कोई भी ऐसा प्रश्न नहीं है जिसका उत्तर स्वर योगी न दे सके, अतः स्वर योगी नीचे लिखी बातोंको ध्यानमें रखकर उत्तर दे —

वातावरण, समय, उम्र, तिथि, वार, रात्रि, दिन, तत्त्व, अन्तरतत्त्व, प्रकृति, विज्ञान, मनोविज्ञान आदि । योगीका उत्तर देनेके दिन सूर्योदयके समय शुद्ध स्वर होना चाहिए और प्रश्नकर्त्ताका भी सूर्योदयके समयका स्वर पूछकर उत्तर देना चाहिए, अन्यथा पूर्ण सफलता प्राप्त न होगी । उपरोक्त विधिसे प्रश्नोत्तर दिया जावेगा तो दोनोंको सिद्धि होगी । प्रश्नकर्त्ता इसी हेतु आवे और उत्तरदाता इसी हेतु बैठकर उत्तर दे । दोनोंका मन एक हो और किसी प्रकारका दूसरा भाव दोनोंके मनमें न हो तो तात्कालिक पूर्ण सफलता होगी ।

(२) सूर्यस्वर चलने समय प्रश्नकर्त्ता नीचेसे, पीछेसे या दाहिनी ओरसे यदि प्रश्न करे तो उसका कार्य सिद्ध होगा और इसी तरहसे इडा नाडीमें प्रश्नकर्ता ऊपरसे, सामनेसे और बाईं ओरसे प्रश्न करे, तो उसका कार्य सिद्ध होगा। इस रीति के अपनानेसे हमेशा ही कार्यसिद्धि मिलती रही है, परन्तु साथ साथ दाहिने स्वरमें सामनेसे प्रश्न करनेवाले को भी कभी कभी सिद्धि मिलती है, ऐसा मेरा अनुभव है।

(३) यदि प्रश्नकर्त्ता उत्तरदात्ताके दक्षिणकी ओर बैठकर प्रश्न करे और उस समय उत्तरदात्ताका चन्द्रस्वर चलता हो तो कार्यसिद्धि नहीं होगी, यदि उत्तरदात्ताका दक्षिण स्वर चल रहा हो तो कार्य सिद्धि अवश्य होगी।

(४) यदि प्रश्नकर्त्ता बाईं ओरसे आकर उत्तरदाताके दाहिनी ओर बैठ जावे, जबकि उत्तरदात्ताका बायाँ स्वर चलरहा हो तो कार्यनाश होगा। इसी तरह से उत्तरदात्ताका दक्षिण स्वर चलरहा हो और प्रश्नकर्त्ता दाहिनी ओरसे बाईं ओर जाकर बैठ जावे तो भी कार्यनाश होता है।

(५) यदि उत्तरदात्ताका दाहिना स्वर चलरहा हो और प्रश्नकर्त्ता बाईं ओरसे आकर दाहिनी तरफ बैठ जावे, तो प्रश्नकर्त्ता सारी बाधाओंको आसानीसे दूर कर सुन्दर सफलता प्राप्त करता है। इसी तरह उत्तरदाताका चन्द्रस्वर हो और प्रश्नकर्त्ता नीचेसे ऊपर, पीछेसे सामने, दाहिनी ओरसे

त्रयोदश प्रकाश

स्वर सहायतासे प्रश्नोका उत्तर

प्रश्नोत्तरी

(१)—इस विश्वमें कोई भी ऐसा प्रश्न नहीं है जिसका उत्तर स्वर योगी न दे सके, अत स्वर योगी नीचे लिखी बातोंको ध्यानमें रखकर उत्तर दे.—

वातावरण, समय, उम्र, तिथि, वार, रात्रि, दिन, तत्त्व, अन्तर्गतत्त्व, प्रकृति, विज्ञान, मनोविज्ञान आदि । योगीका उत्तर देनेके दिन सूर्योदयके समय शुद्ध स्वर होना चाहिए और प्रश्नकर्त्ताका भी सूर्योदयके समयका स्वर पूछकर उत्तर देना चाहिए, अन्यथा पूर्ण सफलता प्राप्त न होगी। उपरोक्त विधिसे प्रश्नोत्तर दिया जावेगा तो दोनोंको सिद्धि होगी। प्रश्नकर्त्ता इसी हेतु आवे और उत्तरदाता इसी हेतु बैठकर उत्तर दे। दोनोंका मन एक हो और किसी प्रकारका दूसरा भाव दोनोंके मनमें न हो तो तात्कालिक पूर्ण सफलता होगी।

(२) सूर्यस्वर चलने समय प्रश्नकर्त्ता नीचेसे, पीछेसे या दाहिनी ओरसे यदि प्रश्न करे तो उसका कार्य सिद्ध होगा और इसी तरहसे इडा नाड़ीमें प्रश्नकर्ता ऊपरसे, सामनेसे और वाईं ओरसे प्रश्न करे, तो उसका कार्य सिद्ध होगा। इस रीतिके अपनानेसे हमेशा ही कार्यसिद्धि मिलती रही है, परन्तु साथ साथ दाहिने स्वरमें सामनेसे प्रश्न करनेवाले को भी कभी कभी सिद्धि मिलती है, ऐसा मेरा अनुभव है।

(३) यदि प्रश्नकर्त्ता उत्तरदात्ताके दक्षिणकी ओर वैठकर प्रश्न करे और उस समय उत्तरदात्ताका चन्द्रस्वर चलता हो तो कार्यसिद्धि नहीं होगी, यदि उत्तरदात्ताका दक्षिण स्वर चल रहा हो तो कार्य सिद्धि अवश्य होगी।

(४) यदि प्रश्नकर्त्ता वाईं ओरसे आकर उत्तरदाताके दाहिनी ओर वैठ जावे, जबकि उत्तरदात्ताका बायाँ स्वर चलरहा हो तो कार्यनाश होगा। इसी तरह स उत्तरदात्ताका दक्षिण स्वर चलरहा हो और प्रश्नकर्त्ता दाहिनी ओरसे वाईं ओर जाकर वैठ जावे तो भी कार्यनाश होता है।

(५) यदि उत्तरदात्ताका दाहिना स्वर चलरहा हो और प्रश्नकर्त्ता वाईं ओरसे आकर दाहिनी तरफ वैठ जावे, तो प्रश्नकर्त्ता सारी वाधाओंको आसानीसे दूर कर सुन्दर सफलता प्राप्त करता है। इसी तरह उत्तरदाताका चन्द्रस्वर हो और प्रश्नकर्त्ता नीचेसे ऊपर, पीछेसे सामने, दाहिनी ओरसे

बाई ओर आकर बैठजावे तो उसको पूर्ण सिद्धि व शान्ति मिलती है। इसी तरहसे मूक प्रश्नोंका उत्तर देना चाहिए। यह आवश्यक नहीं कि प्रश्नकर्त्ता अपनी बात बनावे। उत्तरदाताको तो केवल अपना स्वर देखकर ही उत्तर देना चाहिए। एक बात और है, कि प्रश्नकर्त्ताका स्वर उत्तरदात्ताकी ओरका चलना चाहिए अन्यथा सन्तोषजनक सिद्धि न होगी।

(६) स्वर चलते समय इस बातका पूर्ण ध्यान रखना चाहिए कि इडा और पिगला नाड़ीमें कौनसा तत्त्व व अन्तर तत्त्व चलरहा है। जल पृथ्वी या इन दोनोंके सगमसे हर कार्यमें सफलता मिलती है। अग्नि, वायु, आकाशतत्त्वमेंसे कोई एक हो तो सफलता नहीं मिलती।

स्वरके भीतर जाते समय यदि कोई दूसरा मनुष्य आकर अपनी मनोवाञ्छित बात पूछे तो उसको सिद्धि मिलती है यदि स्वर निकलते समय पूछे तो उस पुरुषको सिद्धि नहीं मिलती यथा —

"जब स्वर बाहिरको चले, तब कोई पूछे तोर।
ताको ऐसे भाषिये, नहीं कारज विधि कोर॥"

चरणदास

(७) रोगी सम्बन्धी प्रश्न

यदि कोई प्रश्नकर्त्ता रोगीके सम्बन्धमे बाई ओरसे प्रश्न करे और उत्तरदाताका सूर्यस्वर चलरहा हो तो रोगी

नहीं बचेगा। यदि वामस्वरमें बाईं ओर से प्रश्नकिया जाय और पृथ्वीतत्त्व हो तो एक मासमें रोगी ठीक हो जावेगा। यदि सुषुम्ना हो तथा गुरुवार हो और वायुतत्त्व भी चलरहा हो तो रोगी मरेगा नहीं परन्तु शनिवार हो और आकाशतत्त्व हो तो रोगी इसी रोगसे मर जायगा।

चन्द्रनाड़ीमें प्रश्नके समय जल या पृथ्वीतत्त्वमें एक रोग और बाकी तत्त्वोंमें ज्यादा रोग बतलाने चाहिए। सूर्यस्वर में अग्नि, वायु, आकाशमें एक रोग और पृथ्वी, जलमें अनेक रोग समझने चाहिए।

प्रवास सम्बन्धी प्रश्न

प्रश्न करते समय पृथ्वीतत्त्व हो तो प्रवासमें कुशलता।
" " जलतत्त्व हो तो रास्तेमें पानीसे कष्ट।
" " अग्नितत्त्व हो तो कष्ट।
" " वायुतत्त्व हो तो प्रवासी आगे चलागया है।
" " आकाशतत्त्व हो तो प्रवासी रोगी होगया है।
" " सुषुम्ना पृथ्वी व आकाशतत्त्वोंका संयोग हो तो प्रवासी मर जायगा।



तत्त्वोंमें विशेष बातें

यदि पृथ्वीतत्त्व चलरहा हो तो मूल (पेड, पौधा और धन) की व बहु पादवालोंकी चिन्ता होती है। जल व वायुमें जीव सम्बन्धी तथा दो पैर वालों की। अग्नितत्त्वमें धातु सम्बन्धी तथा चार पादवालोंकी चिन्ता होती है। आकाशतत्त्वमें शुभ कामके नष्ट होनेकी व पाद हीन वालोंसे चिन्ता होती है। इस मतका समर्थन सत्त-ज्ञान-चिन्तामणि और शिव-स्वरोदयने भी किया है।

चतुर्दश प्रकाश

स्त्री व स्वरशास्त्र

जिस तरहसे हर बातमें स्त्रीका बाया तथा पुरुषका दाहिना अङ्ग शुभ कहा गया है, उसी तरह स्वरशास्त्रमें भी स्त्रीका बाया और पुरुषका दाहिना स्वर शुभ बतलाया गया है। हमारे हिन्दुधर्मशास्त्रमें भी स्त्रीको पुरुषका वामाङ्ग समझा गया है। इसका यही कारण है कि प्रकृति भी स्त्रीके वामाङ्गको प्रधानता देती है और उसका वामाङ्ग ही वास्तविक स्त्रीत्व प्रकट करता है। इस कारण जब स्त्रीका वाम स्वर चल रहा हो तभी वह अपने असली रूपमें होती है और अपने गुणोंको भी प्रकृतिके अनुसार अच्छी तरह प्रकट कर सकती है, अर्थात् वास्तविक प्रकृति व स्थितिका आनन्द प्राप्त कर

सकती है, साधारण रूपसे तो स्त्री और पुरुष दोनों पर स्वर शास्त्र एकसा ही लागु होता है, परन्तु जहांपर स्त्री पुरुषमें भिन्नता या समानताका प्रश्न उपस्थित होता है उस समय स्वर शास्त्र निम्नलिखित प्रकारसे इस प्रश्नका समुचित रूपसे उत्तर देनेमें सफल होता है। जब पुरुषकी चन्द्रनाडी और स्त्रीकी सूर्यनाडी चलती हो उस समय पुरुष स्त्रीगुण विशेप का परिचायक होता है, और स्त्री पुरुपगुण विशेपकी परिचायिक होती है। अर्थात स्त्री और पुरुपके गुणोंमे क्रमसे विपरीतता सी मालूम होती है, अत. जब स्त्रीको पुरुप प्रधान गुणोंका कार्य करना पडे, तो उसको दाहिने स्वरमें करना चाहिए और पुरुपको स्त्रीप्रधान गुणोंका कार्य करना पडे तो वामस्वरमे करना चाहिए। यदि लड़का उत्पन्न करना हो तो पुरुपका दाहिना और स्त्रीका बाया स्वर होना चाहिए। कन्या उत्पन्न करनी हो तो इसके विपरीत नाड़िया होनी चाहिए।

प्राचीन कालमें स्त्रियाँ स्वरका महत्त्व जानती व समझती थी। आज अशिक्षाके कारण और समझदार स्त्रियोंकी परम्परा शृङ्खला टूट जानेसे स्त्रीजातिमें स्वरज्ञान नहीं रहा। किन्तु प्राचीन कालमें स्त्रियाँ अपने पतियोंके स्वरज्ञानी होनेमें अपना गौरव मानती थी और उनको स्वरज्ञानी बनने में प्रोत्साहन देती थी, जैसा कि नीचे लिखे राजस्थानी गीत के इस अंशसे साफ प्रकट है —

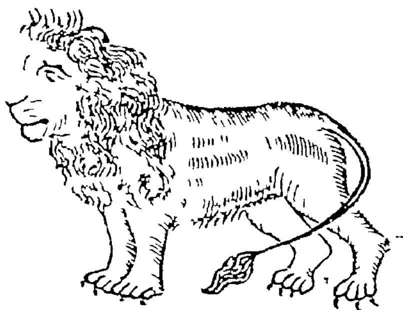
गीत

काले से करवै, भँवरजी ! जीन करो,

काजा थारी मिरगा-नैणी रा केस,

सुरज्ञानी ओ ढोला !

अर्थ— एक पुराने जमानेकी स्वर योगिनी अपने पतिको सम्बोधित करके कहती है कि हे स्वरज्ञानी पति देव ! कालेसे ऊँट पर काठी सजाइये, क्योंकि आपकी मृगनयनी धर्म पत्निके भी काले बाल हैं।



पंचदश प्रकाश

स्वरसे स्मरणशक्ति, शुभ मुहूर्त्त एवं छायापुरुष सिद्धि

स्वरका प्रभाव

पिछले दो वर्षोंसे रातको मैं सोनेके समयसे सूर्योदय तक दो बार दोनों नथुनोंसे बाम व दक्षिण स्वर चलाया करता हूँ अर्थात् रातको केवल एक बार ही करवट लेता हूँ। इससे मुझे बड़ा ही सुन्दर फल मिला है यानि मुझे ईश्वरमें दृढ़विश्वास हुआ है और आत्मविश्वास भी बहुत अधिक मात्रामें हो गया है। ज्ञानकी वृद्धि हुई है। नई नई कई पक्की सूझें मस्तिष्कमें आई हैं, जिनसे मुझे प्रत्यक्ष लाभ दृष्टिगोचर हो रहा है और कुछ अंशोंमे मुझे सिद्धि भी मिल रही है। भविष्यमें सफलताकी पूर्णआशा बन्धगई है।

मन निष्काम कर्मकी तरफ खींचकर इस ओर प्रयत्नशील हो रहा है और मेरी भी ईश्वरसे यही प्रार्थना है कि मुझे पूर्ण रूपेण निष्काम कर्ममें लगावे; क्योंकि ऐसा करनेमें मुझे बहुत ही ज्यादा आनन्द आ रहा है, और चित्त भी रात दिन पहलेसे अधिक प्रफुल्लित रहता है। पहलेसे भयकी कमी, मन में शान्ति व सन्तोष, अधिक बल प्राप्ति, बहुतसी बीमारियोंसे छुटकारा और आत्मामें नवीन ज्योतिका आविर्भाव हो रहा है। मुझे पूर्ण आत्मविश्वास है कि यदि मैंने भविष्यमें कोई कुपथ्य नहीं किया तो कभी भी बीमारीसे ग्रस्त न होऊँगा। मनुष्य अज्ञानवश ही बीमारियोंसे नाता जोड़ लेता है। मैं इहलौकिक और पारलौकिक कई सुखोंका अनुभव कर रहा हूँ। उदाहरणार्थ- मेरी यह दृढ धारणा है कि मेरी आयु कमसे कम १०० वर्षकी होगी और मैं अपनी इस आत्मशक्तिके द्वारा बुढापा पास न आने दूंगा। अब मेरा विचार है कि तीन चार मासके बाद रातमें केवल दाहिना और दिनमें बाया स्वर चलाऊँ तो १२० वर्षकी आयु हो सकती है।

मैंने ऊपर लिखा है कि मैं पिछले दो वर्षोंसे केवल एक बार स्वर बदलता हूँ। प्रारम्भमें मैंने चन्द्रस्वर १२ घड़ी प्राय चलाया, इससे मेरा शत्रुपक्ष प्रबल होगया, पर १२ घड़ी चन्द्रस्वर चलना इसका कारण था, जिसका वर्णन द्वादश प्रकाशमें हो चुका है। अब मैंने रात्रिको ४, ८, १४ घड़ी

चन्द्रस्वर चलाना शुरू कर दिया है इससे मेरे शत्रु पक्षका नाश हो रहा है और प्रतिदिन सब प्रकारसे मेरा अभ्युदय हो रहा है।

स्वर साधनमें प्रत्येक मनुष्यका प्रत्येक समय एकसा स्वर नहीं चलसकता, क्योंकि स्वरका बायां दाया होना सूर्योदय पर निर्भर है और सूर्योदय सब जगह एक समय नहीं होता।

लकड़ीका एक टुकड़ा सिर पर रख कर उसको एक *स्मरण शक्ति* लकड़ीकी छोटीसी हथौड़ीसे धीरे धार ठोके, इससे स्मरणशक्ति अवश्य बढ़ेगी।

किसी आचार्यका मत है कि चन्द्रस्वर शीतल होनेसे ज्यादा चलना अच्छा है और सूर्यस्वर गर्म होनेसे कम।

कौनसा स्वर चलाना अधिक लाभ दायक

मेरी समझमें यह मत ठीक नहीं, क्योंकि शरीरमें सर्दी और गर्मी समभावसे रहनी चाहिए अन्यथा कष्ट भोगना पडेगा। प्रकृति भी सर्दी और गर्मीके समभावसे अपनी उपादेयता सिद्ध कर रही है, अत. ये दोनों बराबर चलने ठीक हैं।

स्वरमें उत्तरायण दक्षिणायन

इड़ा (दिन) नाड़ी उत्तरायण है और पिंगला (रात्रि) दक्षिणायन है। दिन-रातमें छओं ऋतुएँ व्यतीत होती हैं; जैसे.—

ऋतु	समय
१ वसन्त	प्रात कालमें
२ ग्रीष्म	दोपहरमें
३ वर्षा	शामको
४ शरद्	रात्रिके प्रथम हिस्सेमें
५ शिशिर	मध्य रात्रिमें
६ हेमन्त	रात्रिके अन्तिम हिस्सेमें

पं० नारायणप्रसाद तिवाडीकी यह दिव्य सूझ है कि यदि किसी क्रोधी, दुष्ट, शत्रुके पास जाना हो तो प्रस्थानके समय जिधरका स्वर न चलरहा हो उधरका पैर आगे बढाकर प्रस्थान करना चाहिए और शत्रुको अचलित स्वरकी ओर रखकर बातचीत करनी चाहिए। अचलित-स्वरके पैरको आगे बढाकर प्रस्थान करना तिवारीजीके सिवाय किसीने नहीं लिखा है अतः विज्ञ पाठकोंको इसका परीक्षण करना चाहिए।

सबसे सरल मुहूर्त

स्वरके अनुसार कार्य करनेसे ज्योतिषियोंके बताये हुए पेचीदे मुहूर्तोंसे छुटकारा पाना है क्योंकि इसमें तिथि, वार दिशाशूल, योग आदि का कोई झंझट नहीं रहता, अत ज्योतिषका यह सबसे सरल मुहूर्त है।

यदि पृथ्वी व जलतत्त्व अधिक चले तो धन मिलता है व स्वास्थ्य ठीक रहता है। यदि वायुतत्त्व ज्यादा चले तो

विपत्ति और झंझट होते हैं, अग्निसे रोग और आकाशसे हानि होती है। बहुतसे व्यक्ति बैठे हों और अचानक वायुतत्त्व चले तो समझलो कि कोई आदमी जानाचाहता है, तो कह देना चाहिए कि जो जाना चाहता है वह चलाजावे ।

'हंस' व 'सोऽहं' शब्द

'हस' व 'सोऽह' शब्दमें 'हकार' शिव-स्वरूप और 'सकार, शक्ति स्वरूप है । बाईनाडीको चलानेवाला चन्द्र शक्ति स्वरूप व दाहिनी नाड़ीको चलानेवाला सूर्य शंकर स्वरूप है।

'हकार, श्वासके निकलनेमें और 'सकार, अन्दर जानेमें काम आता है, अर्थात् 'हकार, नाश स्वरूप है क्योंकि प्रथमतो बाहर निकली हुई वायु निष्फलता देती है और दूसरे आयुर्वेदिक सिद्धान्तसे भी वह हवा अशुद्ध होती है जबकि इसके विपरीत अन्दर जानेवाली हवा पुष्टि दातृ और शरीरमें जाकर हर बीमारीको नष्ट करनेवाली व डूबते हुएको पानीके ऊपर लानेवाली होती है। देखनेमे आया है कि डूबता हुआ मनुष्य यदि 'सकार, शक्ति रूप वायुको अन्दर लेजाकर कुछ ही क्षण रोकले तो डूबनेसे रुक सकता है। इसी तरह से यदि 'सकार, के यानि हवाके प्रवेश करते समय दान किया जावे तो उसका फल कोटि गुना होकर इसी जीवनमें मिलता है।

प्रातःकाल यत्न करके योगीजन कालको हटानेके लिए स्वर साधनका कार्य करते हैं जिससे मृत्यु टाली जासकती

है। वायु (स्वर) सम रसवाला हो और साथमें सब तत्त्वोंसे युक्त गुणोंको बहानेवाला हो तो योगियोंके योगमें सिद्धि देता है।

छाया पुरुषके परिज्ञानसे साधारण मनुष्य भी त्रिकालज्ञ होकर देवोंकी समता प्राप्त करसकता है। इसका लक्षण नीचे लिखा जाता है।

छाया पुरुष

卐 एकान्त वनमे जाकर सूर्यको अपनी पीठ पीछेकर सावधानीके साथ अपनी छायाको कण्ठदेशके देखें, फिर आकाशकी ओर देख 'ॐ ह्रींपरब्रह्मणे नम' इस मन्त्रका १०८ वार जप करे तो वह शिवजीके दर्शन करसकता है, जिनका स्वरूप शुद्ध स्फटिक तुल्य है और अनेक रूपधारी उस महादेवको ६ मासके निरन्तर अभ्याससे देखनेके बाद भूचरों (प्राणियों) का स्वामी होजाता है और दो वर्ष तक अभ्यास करनेसे स्वय कर्ता, हर्ता और स्वय प्रभु होजाता है।

निरन्तर अभ्यास करे तो त्रिकालज्ञ होकर परमानन्द को प्राप्त करता है। उसके लिए कुछ भी दुष्प्राप्य नहीं

卐 एकान्ते विजने गत्वा कृत्वाऽऽदित्य च पृष्ठत
निरीक्षयेन्निजच्छायां कण्ठदेशे समाहित ।
ततश्चाकाशमीक्षेत ह्रींपरब्रह्मणेनम'
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा तत पश्यति शङ्करम् ॥

रहता। जो योगी उस महादेवके रूपको निर्मल आकाशमें कृष्णवर्णका देखे तो ६ महिनेके भीतर उसकी मृत्यु होती है। पीत वर्ण देख तो व्याधि, लालमें भय, नीलेमें हानि होती है और अनेक वर्णका देखे, तो वह योगी अनेक सिद्धियोंको प्राप्त होता है।

यदि उसको अपनी छायामें पैर और पेट न दिखाई दे, तो निश्चय ही वह योगी मर जायगा। वाम भुजा कटी हुई दीखे, तो स्त्री-मृत्यु, दाहिनी भुजा न दीखे, तो एक महिनेके भीतर निकटतम-बन्धुकी मृत्यु, सिर न दीखे तो एक मासमे, कन्धे व जघा न दीखे तो आठ ही दिनमें और सम्पूर्ण छायाका लोप हो जावे तो उसी दिन स्वय मृत्युको प्राप्त होता है।

प्रात काल इसी तरह अगुलियोंको देखे, सारी न दीखे तो १ मिनटमें मृत्यु, और जो छाया तथा अपनेको न देखे तथा छाया पुरुषके कान, कन्धे, हाथ मुख पार्श्व और हृदय को न देखे, तो तत्काल मृत्यु होजाती है और यदि सिर न दीखे तथा दिशाओंका ज्ञान भी न रहे तो वह मनुष्य ६ महिने तक ही जीता है।

षोडश प्रकाश

स्वरका योगसे सम्बन्ध

कल्याणके योगाकमें योग शब्दकी व्युत्पत्ति इस तरह की है कि योग शब्द 'युज् समाधौ' धातुसे घञ् प्रत्यय होकर बना है, अतएव इसका अर्थ संयोग न होकर समाधि ही हुआ है। समाधि नाम चित्तवृत्तिनिरोधकी क्रियाशैलीका है, उस क्रियशैलीको महर्षियोंने चार भागोंमें विभक्त किया है- मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग और राजयोग।

योग भारतवर्षकी अमूल्य सम्पत्ति है।

दर्शनशास्त्र महर्षियोंकी योगविद्याका ही चमेत्कार है। स्मृति, पुराण अन्यान्य चिकित्सा-ज्योतिषादि शास्त्र, अधिक क्या, समस्त विद्याए योगाभ्यासजन्य ऋतम्भरा प्रज्ञाके ही मधुर एव मनोहर फल हैं। अतएव आर्यजातिके समस्त

साहित्यमे ही योगका मुक्तकण्ठसे गुणगान हुआ है। एकाग्रता, समाधि तथा योग ये तीनों शब्द एक ही अर्थके प्रतिपादक हैं। विचार करनेसे सिद्ध होगा कि संसारका कोई भी ऐसा कार्य व्यावहारिक या पारमार्थिक नहीं है, जो विना चित्तकी एकाग्रताके निष्पन्न हो सकता हो।

आजकल नये नये वैज्ञानिक आविष्कार भी, अमरकीर्ति न्यूटन प्रभृति वैज्ञानिक महानुभावोंकी एकाग्रताके ही दिव्य चमत्कार हैं। अत प्रत्येक प्राणीको एकाग्रता या योगकी शरणमें अवश्य ही आना होगा। अन्यथा वह अपने लौकिक और पारलौकिक किसी भी अभीष्टको सिद्ध न कर सकेगा।

समष्टि-व्यष्टिके सिद्धान्तानुसार जीव शरीररूपी पिण्ड, समष्टिसृष्टिरूपी ब्रह्माण्ड दोनों एक हैं। अत ब्रह्माण्डकी समस्त वस्तुओंका अस्तित्व उसीके समान पिण्डमें अवश्य है। पिण्डमें ब्रह्माण्ड व्यापिनी प्रकृतिशक्तिका केन्द्रमूलाधार-पद्ममें स्थित सार्धत्रिवलयाकारा-साढे तीन चक्र लगाये हुए सर्पवत् कुण्डलाकृति कुण्डलिनी है। ब्रह्माण्डव्यापी पुरुषका केन्द्र सहस्रदलकमल है, निद्रित कुल कुण्डलिनी-को गुरूपदिष्ट योगक्रियाओंसे प्रबुद्ध करते हुए कुलकुण्डलिनीरथ प्रकृतिशक्तिको सुषुम्नानाड़ीगुम्फन षट्चक्रोंके भेदन द्वारा लेजाकर सहस्रदलकमलविहारी परमात्मामें ६

करनेकी जो क्रियाशैली है और तदनुयायी जितने साधन हैं, उनको लययोग कहते हैं।

लययोगके अंग—

यम, नियम, स्थूलक्रिया, सूक्ष्मक्रिया, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, लयक्रिया और समाधि।

सूक्ष्मक्रियाके साथ स्वरोदय साधनका, प्रत्याहारके साथ नादानुसन्धानक्रियाका और धारणाके साथ षट्चक्रभेदन-क्रियाका सम्बन्ध है।

पायुसे दो अङ्गुल ऊपर और उपस्थसे दो अङ्गुल नीचे चतुरङ्गुलविस्तृत समस्त नाड़ियोंका मूल स्वरूप पक्षीके अण्ड की तरह एक कन्द विद्यमान है, जिसमेंसे बहत्तर हजार नाड़ियाँ निकलकर सारे शरीरमें व्याप्त हुई हैं। उनमेंसे योगशास्त्रमें तीन नाडिया मुख्य कही गयी हैं–इडा, पिङ्गला और सुषुम्ना। इसलिये इन तीनों नाडियोंका स्वरमें वर्णन है इसलिये स्वरका योगसे सम्बन्ध है यानि सुषुम्ना नाडी में श्वासायाम करके बैठजावे और महामुद्रा, महाबन्द व शक्ति चालिनी मुद्रा करनेसे अर्थात् गुद्द्वार और मूत्रद्वार के बीचमें ७ अङ्गुल मध्यस्थान पर एडीसे चोट करे इससे प्राणवायु जागउठता है, पीछे कुण्डलिनी जागती है।

चन्द्ररूपिणी इडा मेरुदण्डके वाम भागमें, सूर्यरूपिणी पिङ्गला मेरुदण्डके दक्षिण भागमें और चन्द्र सूर्यादि रूपिणी

त्रिगुणमयी सुषुम्ना मध्यभागमें विराजमान रहती है। मूल से उत्थित इड़ा और पिंगला मेरुदण्डके वाम और दक्षिण भागमें समस्त पद्मोंको वेष्टन करके आज्ञाचक्र पर्यन्त धनुपाकार से जाकर भ्रूमध्यके ऊपर ब्रह्मरन्ध्र मुखमें सङ्गता हो नासा-रन्ध्रमें प्रवेश करती हैं।

भ्रूमध्यके ऊपर जहाँ पर इडा और पिङ्गला मिलती हैं, वहा पर मेरुमध्यस्थित सुषुम्ना भी जा मिलती है।

इसलिये यह स्थान त्रिवेणी कहलाता है क्योंकि शास्त्र में इन तीनों नाडियोंको गङ्गा, यमुना और सरस्वती कहा गया है यथा—

इडा भोगवती गङ्गा पिङ्गला यमुना नदी।
इडापिंगलयोर्मध्ये सुषुम्ना च सरस्वती॥

इस त्रिवेणीमें योगवलसे जो योगी अपने आत्माको स्नान करासकते हैं—

त्रिवेणीयोग सा प्रोक्ता तत्र स्नानं महाफलम्।

–इस शास्त्रीय वचनके अनुसार उनको मोक्षकी प्राप्ति होती है।

प्रणवाकृति सुषुम्ना धनुपाकार इड़ा और पिङ्गलाके वीचमे-से मेरुदण्डके अन्ततक जाकर उससे पृथक् हो पकाकार-को धारण करके भ्रूयुगलके ऊपर इडा और पिङ्गलाके साथ ब्रह्मरन्ध्रमुखमे सङ्गता हो ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त जाती है। वस,

इडा पिङ्गलाके समान सुषुम्ना भी मूलकन्दसे निर्गत हो ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त गयी है।

इस प्रकार मूलकन्दसे लेकर ब्रम्हरन्ध्रपर्यन्त विस्तृत सुषुम्ना नाड़ीकी छै ग्रन्थियाँ हैं, जो षट्चक्र कहलाती हैं। योगक्रियाके द्वारा मूलाधारस्थिता निद्रिता कुलकुण्डलिनी को जाग्रत कर इन छै चक्रोंके द्वारा सुषुम्नापथमें प्रवाहित करके ब्रह्मरन्ध्रके ऊपर सहस्रदलकमलस्थित परमशिवमें लयकरदेना ही लययोगका उद्देश्य है।

प्रथमचक्रका नाम मूलाधार पद्म है वह गुदाके ऊपर और लिङ्गमूलके नीचे सुषुम्नाके सन्धिस्थलमें इसकी स्थिति है। इसके व-श-ष-स, ये वर्ण चार दल हैं, इसका रक्तवर्ण है, इस चक्रकी अधिष्ठात्रीभी देवी डाकिनी है। आधारपद्मकी कर्णिकाओंके गह्वरमें वज्रा नाड़ीके मुखमें त्रिपुर-सुन्दरी-का निवासस्थान एक त्रिकोण शक्तिपीठ है। वह कामरूप कोमल और विद्युतके समान तेजपुञ्ज है। उसमें कन्दर्प नामक वायुका निवास है, वह वायु जीवधारक बन्धुजीव पुष्पके समान विशेष रक्तवर्ण तथा कोटि सूर्य समान प्रकाश-शाली है, उक्त त्रिकोण शक्ति पीठमें स्वयम्भूलिङ्ग विराजमान है, जो पश्चिम मुख, तप्त-काञ्चन-तुल्य कोमल, ज्ञान और ध्यानका प्रकाशक है। इस स्वयम्भूलिङ्गके ऊपर मृणाल अर्थात् कमलकी डण्डीके तन्तुके सदृश सूक्ष्मा शङ्खवेष्टनयुक्ता, और साढे तीन वलयोंके आकारकी सर्प-

तुल्य कुण्डलाकृति नवीन विद्युन्मालाके समान प्रकाश शालिनी कुल-कुण्डलिनी निजमुखसे उस स्वयम्भुलिङ्गके मुखको आवृत करके निद्रिता रहती है। उसके प्रबोधकी क्रियाएँ अतिकठिन गोप्य तथा गुरुप्रसादैकलभ्य हैं।

द्वितीय चक्रका नाम स्वाधिष्ठान-पद्म है, इसकी स्थिति लिङ्गमूलमें है। ब, भ, म, य, र ल ये छै वर्ण उसके दल हैं। इसका रक्तवर्ण है। उसमें बालाख्य सिद्धकी स्थिति है और अधिष्ठात्रीदेवी राकिणी है।

तृतीय मणिपूर नामक चक्र है, जो नाभि मूलमें है और ड, ढ, ण त थ, द, ध, न, प, फ ये दस सुवर्णमय वर्ण जिसके दशदलरूपसे शोभायमान हैं, जहा रुद्राख्य सिद्ध लिङ्ग सब प्रकारके मङ्गलोंको दान कर रहे हैं, और जहाँ परम-धार्मिका लाकिनी देवी विराजमान है।

चतुर्थ हृदयस्थित चक्रका नाम अनाहत चक्र है,—
क, ख, ग, घ ङ, च छ, ज, झ, ञ ट, ठ इन द्वादश वर्णयुक्त, अति रक्तवर्ण इसके द्वादश दल हैं। हृदय अति प्रसन्न स्थान है। इस अनाहत पद्ममें परम तेजस्वी रक्त-वर्ण बाणलिङ्गका अधिष्ठान है, जिसका ध्यान करनेसे इहलोक और परलोकमें शुभफलकी प्राप्ति हुआकरती है। दूसरे पिनाकी नामक सिद्धलिङ्ग और काकिनी नामक अधिष्ठात्रीदेवी वहाँ स्थित है।

पञ्चमपद्मका स्थान कण्ठ है और नाम विशुद्धचक्र है, उसका रङ्ग सुन्दर स्वर्णकी तरह है, (मतान्तरमें धूम्रवर्ण है)– अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः इन षोडशवर्णसुशोभित उसके षोडश दल हैं। इस पद्म में छगलाण्ड नामक सिद्धलिङ्ग और शाकिनी नामक देवी की स्थिति है।

भ्रूद्वयके मध्यमें आज्ञापद्म छठाचक्र है। यह शुभ्र वर्ण है और ह, क्ष युक्त इसके दो दल हैं, शुक्ल नामके महाकाल इस पद्मके सिद्धलिङ्ग और हाकिनी नाम्नी महा-शक्ति इस चक्रकी अधिष्ठात्रीदेवी हैं।

द्विदलपद्मके ऊपर ब्रह्मरन्ध्रमें ही इड़ा, पिङ्गला और सुषुम्नाका संगमस्थान तीर्थराज प्रयाग है, इसमें स्नान करने से तत्क्षण साधक मुक्तिपदको प्राप्त होता है। ब्रह्मरन्ध्रके ऊपर सहस्रदल कमल स्थित है। उस स्थानका नाम कैलाश है, और वहां देवादिदेव महादेव सदा विराजमान है और वही महेश्वर नामक परम शिव है। उनको नकुल भी कहते है। वह नित्यविलासी हैं, उनको क्षय और वृद्धि कदापि नहीं होती, अर्थात् वह सदा एक-रूप ही हैं। इस सहस्रदल कमल में जो साधक अपनी चित्तवृत्तिको निश्चिन रूपसे लीन करता है, वह अखण्ड ज्ञानरूपी निरञ्जन परमात्मा की स्वरूपताको लाभकरलेता है अर्थात् मुक्त होजाता है। इस सहस्रदल पद्म

तुल्य कुण्डलाकृति नवीन विद्युन्मालाके समान प्रकाश शालिनी कुल-कुण्डलिनी निजमुखसे उस स्वयम्भूलिङ्गके मुखको आवृत करके निद्रिता रहती है। इसके प्रबोधकी क्रियाएँ अतिकठिन गोप्य तथा गुरुप्रसादैकलभ्य हैं।

द्वितीय चक्रका नाम स्वाधिष्ठान-पद्म है, इसकी स्थिति लिङ्गमूलमें है। ब, भ, म, य, र, ल ये छे वर्ण उसके दल हैं। इसका रक्तवर्ण है। इसमें बालाख्य सिद्धकी स्थिति है और अधिष्ठात्रीदेवी राकिणी है।

तृतीय मणिपूर नामक चक्र है, जो नाभि मूलमें है और ड, ढ, ण त थ, द, ध, न, प, फ ये दस सुवर्णमय वर्ण जिसके दशदलरूपसे शोभायमान हैं, जहा रुद्राख्य सिद्ध लिङ्ग सब प्रकारके मङ्गलोंको दान कर रहे हैं, और जहाँ परम-धार्मिका लाकिनी देवी विराजमान है।

चतुर्थ हृदयस्थित चक्रका नाम अनाहत चक्र है,—

क, ख, ग, घ ङ, च छ, ज, झ, ञ ट, ठ इन द्वादश वर्णयुक्त, अति रक्तवर्ण इसके द्वादश दल हैं। हृदय अति प्रसन्न स्थान है। इस अनाहत पद्ममें परम तेजस्वी रक्तवर्ण बाणलिङ्गका अधिष्ठान है, जिसका ध्यान करनेसे इहलोक और परलोकमें शुभफलकी प्राप्ति हुआकरती है। इसरे पिनाकी नामक सिद्धलिङ्ग और काकिनी नामक अधिष्ठात्रीदेवी यहाँ स्थित है।

पञ्चमपद्मका स्थान कण्ठ है और नाम विशुद्धचक्र है, उसका रङ्ग सुन्दर स्वर्णकी तरह है, (मतान्तरमें धूम्रवर्ण है)- अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः इन षोडशवर्णसुशोभित उसके षोडश दल हैं। इस पद्म में छगलाण्ड नामक सिद्धलिङ्ग और शाकिनी नामक देवी की स्थिति है।

भ्रूद्वयके मध्यमें आज्ञापद्म छठाचक्र है। यह शुभ्र वर्ण है और ह, क्ष युक्त इसके दो दल हैं, शुक्ल नामके महाकाल इस पद्मके सिद्धलिङ्ग और हाकिनी नाम्नी महा-शक्ति इस चक्रकी अधिष्ठात्रीदेवी हैं।

द्विदलपद्मके ऊपर ब्रह्मरन्ध्रमें ही इडा, पिङ्गला और सुषुम्नाका संगमस्थान तीर्थराज प्रयाग है, इसमें स्नान करने से तत्क्षण साधक मुक्तिपदको प्राप्त होता है। ब्रह्मरन्ध्रके ऊपर सहस्रदल कमल स्थित है। उस स्थानका नाम कैलाश है, और वहां देवादिदेव महादेव सदा विराजमान है और वही महेश्वर नामक परम शिव है। उनको नकुल भी कहते है। वह नित्यविलासी हैं, उनको क्षय और वृद्धि कदापि नहीं होती, अर्थात् वह सदा एक-रूप ही हैं। इस सहस्रदल कमल में जो साधक अपनी चित्तवृत्तिको निश्चित रूपसे लीन करता है, वह अखण्ड ज्ञानरूपी निरञ्जन परमात्मा की स्वरूपताको लाभकरलेता है अर्थात् मुक्त होजाता है। इस सहस्रदल पद्म,

से निर्गत पीयूषधाराको जो योगी निरन्तर पानकरता है वह अपनी मृत्युको मारकर कुल-जयद्वारा चिरञ्जीवी हो जाता है। इसी सहस्रदल कमलमे कुलरूपा कुण्डलिनी महाशक्तिका लय होनेपर चतुर्विध सृष्टिका भी परमात्मामें लय होजाता है। मूलाधारमें जो चार दलोंका पद्म है, इस अवस्थामें वहाँकी कुण्डलिनी शक्ति निश्चय करके अपने स्थानको त्याग करदेती है। क्रमश कुण्डलिनी षट्चक्रभेदन द्वारा सहस्रदलपद्ममें जाकर लयको प्राप्त होजाती है। यहाँ शिवशक्ति संयोग रूप मुक्तिक्रिया कहलाती है और इस अवस्थामें वह योगी अखण्ड ज्ञानरूपी निरञ्जन परमात्माके रूपको प्राप्तकर मुक्त होजाता है।

कल्याणशक्तिअङ्कमें लिखा है कि जितनी शक्तियां इस विश्वका परिचालन करती हैं वे सबकी सब इस नर देहमें विद्यमान है क्योंकि मनुष्य शरीर विशालब्रह्माण्डकी प्रतिमूर्ति है, इसी प्रकार ज्योतिषशास्त्रके अनुसार सारी मेष आदि राशियाँ प्रत्येक प्राणीके अंगोंमें व्याप्त है। जिस प्रकार भूमण्डलका आधार मेरु-पर्वत वर्णित है उसी प्रकार इस मनुष्यशरीरका आधार मेरुदण्ड अथवा रीढकी हड्डी है। मेरुदण्ड ३३ अस्थिखण्डोंके संग्रहसे बना हुआ है (सम्भव है, इस ३३ की संख्याका सम्बन्ध तैंतीसकोटि देवताओं अथवा प्रजापति, इन्द्र, अष्टवसु, द्वादशादित्य और एकादशरुद्रसे हो) भीतरसे यह खोखला है, इसका नीचेका भाग नुकीला और छोटा होता है, इस नुकीले स्थानके आस पासका भाग कन्द कहलाता है

और इसी कन्दमें जगदाधार महाशक्तिकी प्रतिमूर्ति कुण्डलिनी का निवास मानागया है।

सुषुम्ना मेरुदण्डके भीतर कन्दभागसे प्रारम्भ होकर कपालमें स्थित सहस्रदल कमल तक जाती है। जिस प्रकार कदली स्तम्भमें एकके बाद दूसरा परत होता है उसीप्रकार इस सुषुम्ना नाडीके भीतर क्रमशः वज्रा, चित्रिणी तथा ब्रह्म नाडी हैं। योग क्रियाओंद्वारा जागृत कुण्डलिनीशक्ति इसी ब्रह्म नाड़ी द्वारा पिंगला नाड़ीमें स्थित ब्रह्मरन्ध्रतक (जिस स्थान पर खोपड़ीकी विभिन्न हड्डियां एकस्थानपर मिलती हैं और जिसके ऊपर शिखा रक्खीजाती है) जाकर पुनः लौट आती है।

छै चक्र शरीरके जिन अवयवोंके सामने मेरुदण्डके भीतर स्थित हैं-उन्हीं अवयवोंके नामसे पुकारेजाते हैं। इनके अन्य नाम भी हैं। मेरुदण्डके भीतर ब्रह्मनाड़ीमें पिरोये हुए छै कमलोंकी कल्पना की जाती है, इसलिए ये ही कमल षट्चक्र हैं, इनका वर्णन ऊपर करदिया गया है और जो कमी रहगई है वह कल्याणशक्तिअंकके ४५२ पृष्ट पर देखी जासकती है। इसमें लिखा है कि मूलाधारचक्र कमल रक्तवर्ण है और यन्त्रका रङ्ग पीत है, बीज लँ है और बीजका वाहन ऐरावत हाथी और देव ब्रह्मा है, शक्ति डाकिनी है। प्राणायामसे जागृत होकर कुण्डलिनी शक्ति विद्युल्लतारूपमें मेरुदण्डके भीतर ब्रह्म-नाड़ीमें प्रविष्ट होकर ऊपरको चलती है। इसी तरहसे सभी चक्रोंका वर्णन यहाँ कुछ ज्यादा दिया गया है। सहस्रार

चक्रके हजार दलों पर बीस बीस बार प्रत्येकस्वर तथा व्यञ्जन स्थित मानेगये हैं, परमशिवसे कुण्डलिनी शक्तिका संयोग लय योगका ध्येय है। विषय अत्यन्त गहन है पर साराश यह है कि नश्वर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, बुद्धि तत्त्वोंको क्रमशः एक दूसरेमें लीन करके अन्तमें अमर अद्वैतरूपका अनुभव करना मनुष्यमात्रका लक्ष्य होना चाहिए। यही उद्देश्य पञ्चोपचार पूजाका है। ये पाञ्चों उपचार पाञ्चों तत्त्वों के स्थानापन्न हैं। यथा—गन्ध (पृथ्वी) नैवेद्य (जल) दीप (अग्नि) धूप (वायु) और पुष्प (आकाश) इनका समर्पण पाचोंतत्त्वों के लयके तुल्य हैं। इसके अतिरिक्त पृथ्वीसे लेकर आकाश तक क्रमश एक दूसरेसे सूक्ष्मतर तत्त्व है।

प्रत्येक चक्रके सम्बन्धमें दल, तत्त्व, यन्त्र, बीज, वाहन, इत्यादिके विषयमें जो बातें कही गई हैं वे साधारण पाठकों को असम्भवसी मालूम होती होंगी। अत इस विषयमें कुछ विचार अप्रासङ्गिक न होंगे।

पद्मोंके दल—अंग्रेजीमें चक्रोंको *PLUXUES* अथवा नाड़ीमण्डल कहते हैं। यह वर्णन कुछ कुछ कठिन भी है क्योंकि ये छः चक्र मेरुदण्डके उन भागोंमें स्थित हैं, जहासे विशेष संख्याके गुच्छोंमें नाडियाँ निकलती हैं, यही नाड़ियोंके गुच्छे - समताके लिए कमलदल कहे गये हैं। चक्रोंके चित्रोंमें दलोंके अग्रभागसे निकली हुई नाडियाँ दिखलाई गई हैं।

दलोंके वर्ण— उपर्युक्त नाड़ीपुञ्ज किसी रङ्गसे रंगे नहीं हैं। अभिप्राय यह है कि रुधिरके लाल रङ्ग पर भिन्न भिन्न तत्त्वोंके प्रतिबिम्ब पड़नेसे रुधिरके रङ्गमें जिन जिन स्थानोंमें जो विकृतियाँ प्रतीत होती हैं, वही उस नाड़ीपुञ्जका रंग कहागया है, यथा रुधिरमें मिट्टी मिला दीजिये तो हल्का या मटियाला, पीला रंग हो जायगा, जल मिलादीजिये तो गुलाबी रंग होजायगा। रुधिरको आगपर गर्म कीजिये, नीले रंगका होजायेगा। शुद्ध वायुमें रुधिर गहरालाल प्रतीत होगा। रुधिरको घने आकाशमें देखिये, धुएके रंगकासा दीख पड़ेगा।

दलोंके अक्षर—नाड़ीपुञ्जोंपर कोई भी अक्षर लिखे नहीं हैं। तात्पर्य यह कि बोलीके समय वायुका धक्का जिस-दलसे जो अक्षर उत्पन्न करता है वही उसदलका अक्षर माना गया है। यह नादब्रह्मका विषय अत्यन्त गहन है। इसके विषयमें कुछ बातें श्री ज्वालामुखी यात्रा शीर्षक लेख की भूमिकामें लिखीगई हैं, जो 'कल्याणके' ८ वे वर्षकी चौथी संख्यामें मिलेंगी।

चक्रोंके यन्त्र— चक्रोंके यन्त्र क्रमशः चतुष्कोण अर्द्ध चन्द्राकार त्रिकोण, षट्कोण, गोलाकार, लिङ्गाकार तथा पूर्णचन्द्राकार हैं। इसका अर्थ यह है कि इस शरीरकी भिन्न २ नाड़ियाँ वायुके धक्कोंके कारण भिन्न भिन्न तत्त्वोंके स्थानमें

एक विशेष रूपकी आकृतिग्रहण करती हैं। उदाहरणार्थ जलती हुई अग्निको देखिये। ठीक त्रिकोणाकृति दीख पडेगी। त्रिकोणका मुख ऊपरको उठती हुई लपटोंमें दीख पडेगा। इस विषयमें जिज्ञासु पाठकोंको श्री रामप्रसाद कृत *'Nature's finer forces'* नामक ग्रन्थ देखना चाहिए।

यन्त्रोंके तत्त्व—इन तत्त्वोंका तात्पर्य यह है कि भोजन के उपरान्त शरीरके इन २ स्थानोंमें ये वे तत्त्व तैयार होते हैं और इनसे पुष्ट होकर शरीर अपने कार्योंमें प्रवृत्त होता है।

तत्त्वोंके बीज—जिस प्रकार किसी यन्त्रमें (यथा इन्जिनमें) स्थान स्थान पर विशेष प्रकारके शब्द होते हैं, उसी प्रकार वायुके सञ्चारसे शरीरस्थ तत्त्व विशेषोंके स्थान-में विशेष विशेष शब्द होते हैं। यथा पृथ्वी-तत्त्वके स्थानपर जहाँ मल निकलता है वहा वायु ल ल ल ल करता हुआ प्रतीत होता है। मूत्राशयके स्थान पर जल तत्त्वके वहनेके कारण वायु वं, वं, वं, व शब्द करता है। अन्नादि पचनेके समय नाभिके अग्नितत्त्वसे वायु र, र, र, र करता हुआ चलता है, इत्यादि।

बीजोंके वाहन-इनसे यह अभिप्राय है कि इन इन स्थानोंपर वायुकीगति इन इन पशुओंकी तरह होती है। यथा पृथ्वीतत्त्वके बोझके कारण वायुकी गति हाथीकी तरह मन्द हो जाती है। जल-तत्त्वकेवहनेवाला होनेके कारणवायु मकरकी तरह डुबकता चलता

है। जिसप्रकार बटलोहीमें भोजन पकते समय वायु वेगसे चलता है, उसी प्रकार जठराग्निके कारण वायु जिस वेगसे चलता है वह मेंढेकी चालकी तरह है। हृदयके वायुतत्त्वमें शरीरस्थ वायु हिरनकी तरह छलाँग मारकर भागता है, इत्यादि।

चक्रोंके देवीदेव— यह विषय ध्यानयोग तथा उपासना भेदसे सम्बन्धित है और अत्यन्त गहन है। इसके मर्मको केवल साधक ही जान सकता है। 'बालापद्धति,' 'षट्चक्र-निरूपण' आदि ग्रन्थोंके अनुसार अलग अलग देवीदेवता उपरोक्त चक्रोंके हैं इस कारण इस पर ध्यान देकर भिन्न २ ग्रन्थोंसे निचोड़-लेकर नतीजा निकालना चाहिए।

कई बौद्ध बड़े योगी हुए हैं और अब भी तिब्बत में बड़े ही उग्र और शक्तिशाली योगी विद्यमान हैं। इनकी शक्तियोंकी कथायें लोगोंको स्तब्ध करदेती हैं। पाठकोंने गोतमबुद्धकी अनेक मूर्तियोंमें सिरपर घुँघरालेबाल से देखे होंगे यथार्थमें ये केश नहीं हैं। सहस्रारकमलके दल हैं इन मूर्तियोंमें लम्बे फटे कान केवल उग्र योगाभ्यासके द्योतक हैं।

कन्द तथा कुण्डलिनीकी स्थितिके विषयमें कई मत एक तो उपरोक्त मत है जिसमें 'कन्द' मूलाधार चक्रके समी स्थित है। दूसरे मतमें कन्दकी स्थिति नाभिके पास ब गई है, इसके अनुसार कुण्डलिनी भी नाभि-प्रदेशके सम

में स्थित है। तीसरा मत एक पाश्चात्य अनुभवीका है इसके अनुसार कुण्डलिनोका स्थान अनाहत (हृदय) चक्रके पास है, इसका एक चित्र पेरिसमे प्रकाशित *Theosophica Practica* मे मिलता है। जर्मनीमें गिखतेल नामक एक दार्शनिक ईसाकी १७ वीं शताब्दीमें हो गया है जिसका सम्बन्ध सुविख्यात पाश्चात्य योगी मण्डल (*Rosicrucian Society*) से था। इस महात्माको निज देहमें इन चक्रों के दर्शन हुए थे, इस विद्वानके अनुसार इनचक्रोंका सम्बन्ध क्रमश मूलाधारसे सहस्रार तक चन्द्र, बुध, शुक्र, सूर्य, मगल वृहस्पति तथा शनिसे है। यह एक नवीन विचार है, और अपनी पुस्तकोंमें अनुसन्धान करनेके योग्य है। कुण्डलिनी और चक्रोंके विषयमें अंग्रेजीमें कलकत्ता हाई कोर्टके भूत पूर्व जज सर जान वुडरफ द्वारा लिखित (*Serpent Power*) बड़ा ही अपूर्व एव सुन्दर ग्रन्थ है।

कुण्डलिनी जागरण विधि--कल्याणशक्तिअङ्कमें ४५५ पेज पर स्वामी ज्योतिर्मयानन्दजीने दी है और ४७२ पृष्ठ पर प्रोफेसर श्री शकरराव वी दाण्डेकर लिखते हैं कि कुण्डलिनी योगसे आध्यात्मिक आधिभौतिक दोनों लाभ है—शरीर स्वस्थ होता है शरीर पर अपनी हुकूमत चलती है, सिद्धिया मिलती है और परमात्म-तत्त्वका भी परम लाभ होता है। इसलिये इसका वर्णन सुनने मात्रसे इसका साधन करनेकी ओर अनेकों लोग खिच जाते है।

उनका कहना है कि आधुनिक प्रयास वम्बईके डा वसन्त रेले *F C P S L M S* का है इन्होंने अपनी *The mysterious Kundlini* (जो डी बी तारापोरेवाला सन्स एण्ड कों बाम्बेसे प्राप्त होसकती है।) पुस्तकमें शरीर शास्त्र और योगशास्त्र दोनोंका विचार करके यह निश्चय किया है कि कुण्डलिनी दाहिनी वेगस नर्व (*Right Vagus Nerve*) है और भी इस पुस्तकमे कई विचित्र वर्णन हैं।

आर्थर अवेलनने अपनी नागिनीशक्ति (*The serpent power*) पुस्तकमें लिखा है कि कुण्डलिनी गुप्त संगृहीत शक्ति है, यह व्यष्टि शरीरमें उस विश्व महाशक्तिकी प्रतिनिधि है जो विश्वको उत्पन्न करती और धारण करती है।

सरजान वुडरफने डाक्टर रेलेके ग्रन्थकी प्रस्तावनामें कहा है कि रेलेजीका मत एक नवीन स्वतन्त्र आविष्कार है मगर कुण्डलिनी वेगस नर्व है यह नहीं कहा जासकता। वह एक बड़ी संगृहीत शक्ति है (*The grand potential*) इन्होंने शक्ति और शाक्त नामक अपने ग्रन्थमें कहा है कि शक्ति दो रूप धारण करती है, एक स्थिर या संगृहीत (कुण्ड- लिनी) और दूसरा कर्तृत्वशील (जैसे प्राण)।

स्वामी विवेकानन्द इसके विषयमें अपने राजयोगमें कहते हैं कि जिस केन्द्रमें सब जीव–मनोभाव संगृहीत रहते हैं उसे मूलाधारचक्र कहते हैं, और कर्मोकी जो शक्ति, कुण्ड-

लित रहती है वह कुण्डलित (यानि गिंडुलि-सी बनी) होनेसे कुण्डलिनी कहलाती है।

श्री ज्ञानेश्वर महाराज अपने गीताभाष्यमे अध्याय ६ श्लोक १४ का भाष्य करते हुए इसके सम्बन्धमें कहते हैं कि नागिनका बच्चा कुँकुममें नहाया हुआ जैसा अपनी देह को गिंडुली बनाये जैसे सोता है वैसे ही वह कुण्डलिनी अपनी देहको साढेतीन लपेटोंमे समेटकर नीचेकी ओर मुँह किये हुए नागिनसी सोई रहती है। और वे यह भी लिखते हैं कि बादमें कुण्डलिनीका कुण्डलिनी नाम छूट जाता है और उसका मारुत नाम होजाता है पर इसका जो शक्तित्व है वह तब तक रहता ही है जबतक कि वह शिवमें नहीं मिल जाती।

श्री ज्ञानेश्वर आदि योगियोंके मतसे कुण्डलिनी जगाने का उपाय वज्रासन पर खेचरी मुद्रा लगाकर बन्धत्रय साधकर बैठजाना है। अर्थात् एकान्त पवित्र देशमें स्थिर मन होकर सद्गुरु स्मरणानुभाव करके आसन पर बैठे और आगे महाराज कहते हैं —

'मुद्राकी बड़ी महिमा है, वही अब सुनो। पिण्डलियों को जाँघोंसे सटाकर पालथी मारे। पैरोंके दोनों तलवे टेढे करके उन्हें आधार चक्रके नीचे (गुद, शिश्नके बीचकी सीमन पर) ऐसे जमाकर कर रक्खे कि वह स्थिर रहे। यह

ध्यानमें रहे कि दाहिने पैरका तलवा नीचे रहे उसीसे सीयनको दबावे, इससे दाहिने पैर पर बॉया पैर आप ही ठीक बैठ जाता है। गुद और शिश्नके बीच जो चार अङ्गुल जगह है उसको डेढ अङ्गुल ऊपर और डेढ अङ्गुल नीचे छोडकर बीचों बीच जो एक अङ्गुल जगह बचती है वहा दाहिने पैर के तलवेके उत्तर भागसे अपना शरीर ऊपर तौलकर जोरसे दबावे! पीठके नीचेके हिस्सेको ऐसे हल्केसे ऊपर उठावे कि उसे ऊपर उठाया है या नहीं—यह कुछ भी मालूम न हो। इसी प्रकार दोनों टखनोंको भी ऊपर उठावे। यह मूलबन्धका लक्षण है और इसीका गौण नाम वज्रासन है।

'पश्चात् गला आकुञ्चित होता है और गलेके नीचेके गड्ढे-से स्थानमें ठुड्डी अटकी रहती है वहाँ वह मजबूतीसे बैठ जाती है और छातीको दबाये रहती है। हे अर्जुन। जिस बन्धसे कण्ठमणि अदृश्य होता है उसे "जालन्धरबन्ध" कहते हैं।

पेट पीठसे जा लगता है और हृदय-कमल अन्दर खिल उठता है। 'शिश्नस्थानके किनारे पर तथा नाभि स्थानके नीचेके हिस्सेमें जो बन्ध लगता है उसे 'वोढियान बन्ध कहते हैं। '

' जो अपानवायु मूलबन्धसे रुद्ध होता है वह ऊर्ध्वगति से पीछे लौटकर ऊपर अटककर फुलाव पकडता है। रोगोंको पकड पकड़कर दिखाता है और तत्क्षण उनका नाश

करता, है और शरीरमें पृथ्वी और जलके जो अंश हैं उन्हें एक दूसरेमें मिलाता है। अर्जुन। अपानवायु एक तरफ ये सब काम करता है और दूसरी तरफ पद्मासनकी उष्णता कुण्डलिनीशक्तिको जगाती है।

कुण्डलिनी जागती है तब बड़े वेगसे झटका देकर ऊपरकी ओर मुँह फैलाती है, ऐसा मालूम होता है जैसे कि वह बहुत दिनोंकी भूखी हो और शरीरमें पृथ्वी और जलके जो भाग हैं उन सबको चटकर जाती है। जैसे हथेलियों और पाँवतलोंको सोधकर उनका रक्तमाँसआदि खाकर ऊपरके भागोंको भेदती है, और अङ्ग-प्रत्यङ्गकी सन्धियोंको छान डालती है, नखोंका सत्व भी निकालदेती है, त्वचाको अस्थि-पञ्जरसे सटा देती है, पृथ्वी, जल इन दो भूतोंको खा चुकने पर वह पूर्णतया तृप्त होती है और तब शान्त होकर सुषुम्नाके समीप रहती है, तब तृप्तिजन्य समाधान प्राप्त होनेसे उसके मुखसे जो गरल निकलता है उसी गरलरूप-अमृतको पाकर प्राणवायु जीता है और कुण्डलिनीके सुषुम्ना में प्रवेश करने पर ऊपरकी ओर जो चन्द्रामृतका सरोवर है वह धीरे धीरे उलटजाता है और वह चन्द्रामृत कुण्डलिनी के मुखमे गिरता है, इसके द्वारा वह रस सर्वांगमे भरजाता है और प्राणवायु जहाँका तहाँ ही स्थिर होजाता है, उस समय शरीरकी कान्तिका वर्णन ज्ञानेश्वरजी महाराज करते

हैं कि शरीरपर त्वचाकी जो सूखी पपड़ीसी रहती है, वह भूसीकी तरह निकलजाती है तब शरीरकी कान्ति केसरके रङ्गकीसी या रत्नरूप बीजके कोंपलसी, सायकालके आकारके रङ्गकीसी लाली दीखती है। इस तरहसे कुण्डलिनी चन्द्रामृत पान करती हुई ऐसी देह बनाती है जिससे यमराज भी कॉपते हैं। यहीं उसे लघिमादि सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। काया कञ्चन कान्तिवाली हो जाती है। वायु जैसीहल्की होजाती है, कारण कि उसमें पृथ्वी और जलके अंश नहीं होते। सागर पारकी वस्तुको देखना, स्वर्गमें होनेवाले विचारोंको सुनना, चींटी के मनकी भी बात जानलेना, वायुरूपी घोडेपर सवारहोना, पैरोंको विना भिगोये जलपर चलना-ऐसी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

दो भूतोंको खाकर कुण्डलिनी जब हृदयमें आती है तब वायुकी मूर्तिके समान होजाती है, देहका कोई आकार नहीं रहजाता और आकाशकी देह बनी हो ऐसी यह बनजाती है तब उसे खेचर कहते हैं।

इस तरह भूतत्रयका लोपहोने पर प्राणवायु अकेला शरीराकार रहजाता है। फिर वहांसे निकलकर मूर्ध्नि आकाश में जा मिलता है। तब इसका नाम कुण्डलिनी न रहकर मारुत होता है। पीछे यह जागृत होजाती है और जीव स्वय

ही निज रूपको प्राप्त होकर सुख रूप होजाता है। पर ये सारी बातें अनुभवसे जानी जाती हैं, केवल पढ़नेसे नहीं।

सम्पूर्ण जगतको जो चलाती है वह अव्यक्त कुण्डलिनी है और महा कुण्डलिनी कहलाती है तथा व्यष्टि रूप जीव-को चलानेवाली व्यक्त कुण्डलिनी है।

इसकी शक्तिके व्यक्त होनेके साथ ही वेग उत्पन्न होता है उससे जो पहला स्फोट होता है उसको नाद कहते हैं। नादसे प्रकाश होता है और प्रकाशका व्यक्त रूप महाबिन्दु है, जीव सृष्टिमें उत्पन्न होनेवाला जो नाद है वही ॐकार है उसीको शब्द ब्रह्म कहते हैं। ॐकारसे ५२ मातृकायें उत्पन्न हुई, इनमें ५० अक्षरमय हैं, ५१वीं प्रकाशरूप है और ५२वीं प्रकाशका प्रवाह है, यह ५२ वीं मात्रा वही है जिसे सत्रहवीं जीवनकला कहते हैं। उपर्युक्त ५० मातृकाएँ लोम और विलोम रूपसे १०० होती हैं। ये ही १०० कुण्डल हैं। इनको धारण कीहुई मातृकामयी कुण्डलिनी है, इन मातृकाओं की अव्यक्त स्थितिका स्थान सहस्रारचक्र है, यही श्री शिवशक्तिका स्थान है इस स्थानसे उत्पन्न होनेवाली जो जो मातृकायें जिस जिस स्थानमें व्यक्त हुई उन उन मातृकाओं और उनके उन उन स्थानोंको लोम विलोमरूप से नीचे दिखाते हैं—

क्षं

अ———अकुल———ळ
आ——— महाबिन्दु———ह
इ———उन्मना———स
ई———समना ———ष
उ———व्यापिका ——श
ऊ—— शक्ति ——ष
ऋ — नादान्त——ल
ॠ — नाद — र
ऌ — रोधिनी — य
ॡ —अर्धचन्द्रिका— म
ए——— बिन्दु ——— भ
ऐ——— आज्ञा——— ब
ओ—— अन्तराल——फ
औ ——— लम्बिका —— प
अ विशुद्धि———न
अ ——— अन्तराल——ध
क———अनाहत—— द
ख—— अन्तराल —— थ
ग———अन्तराल——त
घ———मणिपूर—— ण

ङ—— स्वाधिष्ठान —— ढ
च —— आधार —— ड
छ —— विषुव —— ठ
ज —— कुलपद्म —— ट
झ —— कुला —— ञ

भ्रूमध्यमें 'ह' 'स' 'हां' 'सोऽहं' मन्त्रके दो वीज दिखाये है, इनके अन्तर्गत, ॐकार वीजसे पहले स्वरोत्पत्ति, पीछे व्यञ्जनोत्पत्ति हुई। भ्रूमध्यगत आज्ञाचक्रके नीचे दूसरे चक्रोंमें क्रमसे इस वर्णोत्पत्तिका क्रम है, यानि इन चक्रोंसे ही मातृकात्मक स्वरमाला और वर्णमाला उत्पन्न हुई।

इन मातृकाओंके स्थान जीवके शरीरमें किस प्रकार हैं ये आगे बतलाते हैं—

अ, आ, कवर्ग —— कण्ठ स्थान
इ, ई, चवर्ग —— तालु स्थान
ऋ, ॠ, टवर्ग —— मूर्धा स्थान
लृ, ॡ, तवर्ग, ल, स —— दन्त्यस्थान
उ, ऊ, पवर्ग —— ओष्ठ स्थान

नोट —

पूरावर्णन कल्याण योगाङ्क ३६० पृष्ठमें देखिये।

ज्ञानेन्द्रियोंके स्थान सहस्रार चक्रमें हैं। किसी भूलीहुई बातका स्मरणकरने अथवा किसी बातका विचार करनेके लिए मनुष्य सिरपर हाथ रखकर आँखें बन्दकरके ऊपरकी ओर ही देखता है, इस तरहसे वह भूलीहुई बातको याद करता है। आजकल वैज्ञानिक आविष्कारोंसे विचारोंके फोटो तक खींचेजाते हैं। इनमें यही देखाजाता है कि विचार-मालिका सहस्रार चक्रसे बाहर निकल रही है।

डाक्टर किलनरने प्राणमयकोष (*Etheric Body*) को देखनेके लिए ऑरोस्पेक (*Aurospec*) नामक चश्मा ढूढ निकाला है। इस चश्मेसे दिव्यदृष्टि होती है अर्थात् उसके द्वारा चाहे जिसका हम प्राणमय शरीर देखसकते हैं। प्राणमय शरीरका प्रकाशरूप उसके अनुभवसे तथा डाक्टर किलनरके आरोस्पेकसे प्रत्यक्ष होता है, इससे सिद्ध है कि कुण्डलिनी शक्ति प्रकाशरूप है।

आजकल कुण्डलिनी उत्थान करानेवाले गुरु विरले ही मिलते हैं। प० खरेजीका कहना है कि एक बंगाली शरीर सन्यासी योगी हैं। इनका नाम नित्यानन्द महाराज है। इन्होंने गुलधणी महाशयकी कुण्डलिनी जाग्रत् करदी, देखिये पृष्ठ ३६५ योगाङ्क। समाधिस्थितिमें नख केशादि नहीं बढते।

बाई आँखसे बाये पैरके अङ्गूठे तक चलनेवाली गान्धारी नाड़ी है और दाई आँखसे दाँये पैरके अङ्गूठे तक

हस्ति जिह्वा नाड़ी है एक सज्जनकी गिरनेसे बाँई आँख बाहर निकल आई। श्रीयोगाभ्यानन्द महाराजके पास उन्हें लेजाये जाने पर महाराजने कहा कि बाये अङ्गूठे पर हथौड़ा मारो। अङ्गूठा खराब हो जायेगा और आंख ठीक होजायेगी। ऐसा करने पर अङ्गूठा बेकार होगया और आँख ठीक होगई। और भी यहाँ नाड़ियोंका वर्णन है योगाकमें लिखा है कि बहुतोंका खयाल है कि हठयोग, राजयोग भिन्न भिन्न वस्तु हैं, पर हठयोग राजयोगकी नींव कहलाता है। 'ह' माने सूर्य—पिंगला दाहिनी ओरकी वायु और 'ठ' माने चन्द्र—इड़ा बाई ओर की वायु। वायुको अन्दर खींचना है 'ह', और बाहर छोड़ना है 'ठ'।

इस लययोगमें (कुण्डलिनी शक्तियोग) साधक सदा ही आनन्दमें रहता है। उसे किसी संगिनी स्त्रीकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि विद्युत्प्रवाहरूपिणी सर्वसौन्दर्यशालिनी सर्वरूपी सर्वसुखदायिनीकुण्डलिनीशक्ति उसके साथ है। श्री शिवराम स्वामी बतलाते हैं कि वृत्तिजिधर जाये उधर आप न जाये, पीछे, साक्षी होकर खड़े खडे देखता रहे तो निज स्वरूपसे भेंट होजाती है। शुक्लपक्षमें महाभाव योगसे ऐसी भावना करनी चाहिए कि कुण्डलिनी शक्ति मूलाधारसे सह-

स्नार तक चलती है और कृष्णपक्षमें इसके विरुद्ध। प्रणव (ॐ) का ध्यान भ्रूमध्यमें करें।

खेचरीमुद्रा सिद्धकरनेके लिए जिह्वा-छेदन बतलाया है फिर दोहन। कुछ बालक अपनी जीभ नासाग्रमें अनायास ही लगाते हैं। ऐसी जीभको छेदनेकी आवश्यकता नहीं। केवल दोहन की जरूरत है। दोहनके लिये वच (उग्रगन्धा) के चूर्णसे जिह्वाको मलना चाहिए। इससे कफ आदि दोष नष्ट होते हैं। बहेड़ाके चूर्णसे दोहन करे और सैंधव लवण से जिह्वाका छिदा हुआ भाग घिसे। छेदन गुरुके समीप रह कर ही करे। डॉक्टरसे ऐसा कराने से वाक्शक्ति नष्ट होती हैं। पूर्ण वर्णनके लिये कल्याण योगाङ्कके ४०२ पृष्ठ देखिये। इस कुण्डलिनीकी गति मैडम ब्लैवेटस्कीने प्रकाशकी गतिसे तेज यानि प्रकाश १,८५ ००० मील प्रति सेकण्ड और कुण्डलिनी ३,४५,००० मील प्रति सेकण्ड चलती बताई है। इसतरह से कुण्डलिनीके विषयमें बहुत जगह वर्णन आया है। यदि किसीको इसके विषयमें और भी विस्तृत ज्ञान प्राप्तकरना हो तो अंग्रेजीमें लिखित कलकत्ता हाईकोर्टके भूतपूर्व जज सर जान वुडरफकी 'सरपेन्ट पावर' (*Serpent power*)

ग्रन्थ, बम्बईके डाक्टर वसन्त रेले ऐफ सी पी ऐस ऐल ऐम· ऐस की *'The mysterious kundalini'* और अवेलनकी *'The serpent power'* पुस्तक, स्वामी विवेकानन्द की पुस्तक 'राजयोग'। श्री ज्ञानेश्वर महाराजकी पुस्तक 'गीता-भाष्य छठा अध्याय', *'The voice of the silence'* 'तत्वसार', हडसन साहबकी *'Science of seer ship'* पुस्तक, कल्याण के योगाक व शक्तिअकोंके कई कुण्डलिनी पर जो लेख हैं उन्हें प॰ और मनन करें। इस तरहसे कुण्डलिनी जागृत करके मनुष्य ईश्वर भावको प्राप्त करके सर्वशक्तिमान होकर मुक्ति प्राप्त करसकता है। यही मनुष्यका अन्तिमध्येय है जो इस ग्रन्थसे प्राप्त होसकता है। अत यह पठन और मननकरने योग्य है। कुण्डलिनीका वर्णन शिवस्वरोदय श्लोक ३३ में आया है अत मेरी बुद्धि अनुसार ग्रन्थ व लेख देखकर मैं यह परिणाम निकालता हूँ कि यह एक शक्ति है जो जागृत की जासकती है। डाक्टर रेलेने लिखा है कि यह वेगसनर्व है, यह गलत मालूम पडता है। यह कुण्डलिनीशक्ति का जागृतस्थान मलद्वार और मूत्रद्वारके बीचमें जो मूला-धारचक्र है उसके मध्यमें ही होना नीचे लिखे कारणोंसे भी सिद्ध होता है —

(१) जैसे पृथ्वीपर विषुवत् रेखा प्रधान है वैसेही इस शरीर पर भी यह उक्तस्थान प्रधान है।

(२) शरीरके प्रधान अंगोंमेंसे ये मलद्वार और मूत्रद्वार

प्रधान हैं और, इन दोनोंका यह मध्य है।

(३) उक्त मध्यस्थानसे ही सारे शरीरको रोमाञ्च करने की क्रियायें होती हैं।

(४) वीर्य जो शरीर सम्राट् है उसको ऊर्ध्वगामी करने के लिये इसी उक्त स्थान पर आसनों द्वारा दबानेकी क्रियायें करनेका विधान है। वीर्यके ऊर्ध्वगामी होने-से ही यौगिक क्रियाओंको प्रोत्साहन मिलता है और ब्रह्मचर्यबल प्रकट होता है जो अनुपम है। और इस ऊर्ध्वगामी क्रियाओंसे ही 'कुण्डलिनी शक्ति' का प्रकट होना भी एक तथ्य है।

उक्त व्यावहारिक कारणोंको देखतेहुए कुण्डलिनीशक्तिको जागृत करनेके लिये विज्ञजनोंको उक्त मध्यस्थान ही मानना आवश्यक हो जाता है। इसका अनुभव मैं तो कररहा हूँ परन्तु पाठकोंको भी इस ओर ध्यान देकर मनन करना चाहिये।

वैसे तो उक्तशक्ति सारे शरीरमें व्याप्त है परन्तु उसको जागृत करनेकी क्रियायें क्या हैं? कैसी हैं? किस प्रकार व्यवहारमें लाई जासकती हैं? आदि प्रश्नोंके उत्तरके लिये ही उक्त विवेचन मैंने ग्रन्थोंमें और विद्वानोंसे जो पढ़ा व सुना है उसके अनुसार आचरण कर उसी अनुभवके आधार पर मैंने उक्त तथ्य आपके सामने रक्खा है।

उपर्युक्त योगोंमेंसे कोई योग, साधक अपनी इच्छानुसार

पूर्णरूपेण साधले तो प्राय' सभी योग स्वत सध-जायेंगे के साधनेसे भी बडी शान्ति और आनन्द प्राप्त होगा साधकको प्रतीत होगा कि वह स्वयम्भू भगवान्में विलीन गया है। उक्त प्रतिपादितयोगोंमे स्वरयोग तो थोडे प्रयासरे साधा जासकता है और लगातार इस ओर प्रयासि रहनेसे एव इस पुस्तकमें बतलाये विधानको व्यवहारमें रहनेसे स्वरयोग साधनमें शीघ्र गति होजायगी औ सर्वसिद्धि प्राप्त होसकती है। विशेषतया यह प्रत्यक्ष लकवत् है।

भविष्यमें इस विषयपर जो खोज होगी एव मुझे जो प्रकाश मिलेगा तो मैं उसको इसी पुस्तकके द्वितीय संस्करण द्वारा आपके समक्ष रखनेको उद्यत होऊ गा ।